ISSN 2230-7370
(Peer - Reviewed)

MAN, NATURE & SOCIETY

Annual Journal of the Department of Political Science

VOL. IX 2023

Prof. Neeta Bora Sharma
Editor-in-Chief
Department of Political Science
D.S.B. Campus, Kumaun University
Nainital

VOL : IX-2023

ISSN : 2230-7370

MAN, NATURE AND SOCIETY

(Annual Journal of the Department of Political Science)

(Peer - Reviewed)

Kumaun University, Nainital - 263002

(India)

CONTENTS

	Editorial		
1.	Green Revolution in Anthropocene : Its Ecological Consequences and the Way Ahead	Dr. Kailash Chandra Yogesh Chandra Pandey	1-5
2.	Regionalism, A search for identity in Indian Politics	Dhiraj Gurung	6-9
3.	Democratisation of Indian Politics through Social Media	Satyendra Tiwari	10-17
4.	Uniform Civil Code in India an the proposal of Uttarakhand Government to implement it	Khushboo Arya	18-22
5.	Van Panchayats, a unique example of Community Forestry : Need for Revival	Kriti Tiwari Prof. Neeta Bora Sharma	23-29
6.	New climate change discourses of India : Moving toward a more advanced climate policy	Radhika Devi Dr. Kalpana S. Agrahari	30-37
7.	Challenges to Indian Federalism	Chandralok Kumar	38-44
8.	अन्य पिछड़ा वर्ग और क्रीमी लेयर	अविनाश जाटव प्रो0 नीता बोरा शर्मा	45-55
9.	गठबंधन सरकारों (1989–2009) के काल में राष्ट्रपति की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन	नीमा	56-66
10.	समाजवादी विचारों की समकालीन प्रासंगिकता : एक अध्ययन	प्रतिभा वर्मा पंकज सिंह	67-74

11.	आधुनिक भारत में पंचायत राज में सशक्त होती महिलाएं	मीनाक्षी	75-78
12.	अनुभववाद : राजनीतिक–दार्शनिक अध्ययन	ममता तड़ागी	79-86
13.	आमूलवादी पर्यावरणीय लोकतंत्र : भारत में पर्यावरणीय स्वराज की ओर बढ़ता कदम	कृष्णपाल सिंह डॉ. महेश मेवाफरोश	87-93
14.	भारतीय राज्य राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन : भूमण्डलीयकरण के विशेष सन्दर्भ में	किरन बिष्ट	94-99
15.	भारतीय संसद में महिलाओं की भागीदारी	प्रियंका पाण्डे	100-103
16.	उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति में स्थानीय मूल जातियों के प्रभाव का ऐतिहासिक निरूपण	डॉ. पूनम पन्त	104-111
17.	भारतीय लोकतंत्र में सहभागी लोकतंत्र की तलाश : लोकपाल के सन्दर्भ में	डॉ. लता जोशी	112-121
18.	उत्तराखण्ड की संस्कृति तथा प्रकृति	डॉ. अंजुम अली	122-125
19.	स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक राष्ट्रवाद	डॉ. प्रकाश लखेड़ा रेखा मौनी	126-135
20.	भारतीय समाज एवं वर्तमान में जनजाति समाज की आर्थिक, सामाजिक स्थिति	डॉ. महेन्द्र प्रसाद	136-139
21.	संसदीय शासन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचारों की प्रासंगिकता	डॉ. सूर्य भान सिंह अशोक कुमार	140-147

अन्य पिछड़ा वर्ग और क्रीमी लेयर

अविनाश जाटव*, प्रो. नीता बोरा शर्मा**

सारांश

भारतीय समाज में जाति प्रथा पाई जाती है। जिसके कारण विभिन्न जातियों के योग से वर्ग बनने लगे। जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, आदिवासी समूह और अन्य पिछड़ा वर्ग आदि। इन वर्गों में से अन्य पिछड़ा वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो विजातिय जातियों के मिश्रण से बना है। ये वर्ग सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से पिछड़ गया तथा समय के साथ इस वर्ग के विकास के लिए भी आरक्षण और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए मांग उठने लगी व आंदोलनों तथा समितियों का जन्म हुआ। तत्पश्चात मंडल आयोग की सिफारिश पर अन्य पिछडे वर्ग को आरक्षण दे दिया गया। परन्तु अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से अलग इसमें एक क्रीमी लेयर की व्यवस्था की गई, जिससे ओ. बी. सी. में दो वर्ग बन गए 1. क्रीमी लेयर 2. नॉन क्रीमी लेयर। जहाँ नॉन क्रीमी लेयर के अन्तर्गत आने वाले लोगों को आरक्षण दिया जाता है। प्रस्तुत पत्र में अन्य पिछड़े वर्ग में क्रीमी लेयर के सिद्धांत का अवलोकन किया गया है।

मुख्य शब्द– अन्य पिछड़ा वर्ग, क्रीमी लेयर, आरक्षण, मंडल आयोग।

प्रस्तावना

भारत में सकारात्मक भेदभाव नीतियां जाति/समुदाय पर आधारित ऐतिहासिक अन्यायों और असमानताओं के कारण उत्पन्न हुई। ओबीसी के लिए सकारात्मक भेदभाव नीति के लाभार्थियों की पहचान करने का कार्य अपेक्षाकृत जटिल हो गया है, क्योंकि वे "अस्पृश्यता" के सामाजिक कलंक के पीड़ित नहीं थे, जैसा कि अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की कमोवेश स्पष्ट रूप से परिभाषित श्रेणी के मामले में था।

"सकारात्मक भेदभाव" की प्रथा भारत में विशिष्ट सामाजिक–ऐतिहासिक परिस्थितियों में शुरू हुई। भारतीय समाज ने मुख्य रूप से एक पदानुक्रमित सामाजिक संरचना का अभ्यास किया। भारत में, नीति आमतौर पर "विशेष उपचार" को संदर्भित करती है, विशेष प्रावधान, रियायतें, विशेषाधिकार और तरजीही उपचार। इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि इस नीति का उद्देश्य संवैधानिक रूप से नियुक्तियों में आरक्षण प्रदान करना है और गरीबी को कम करना नहीं है बल्कि उन लोगों को राज्य की शक्ति में उचित हिस्सा देना है जो काफी लंबे समय से गणना से बाहर हैं। यह निश्चित रूप से सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक उत्थान के लिए उपयोगी हो सकता है क्योंकि ऐसे पूरे समूह ऐतिहासिक रूप से वंचित हैं।

अन्य पिछड़े वर्गों की श्रेणी विषम है, एक राज्य से दूसरे राज्य में बहुत भिन्न है। अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) शिक्षा, आर्थिक स्थिति के मामले में पिछड़े हैं और उनकी सामाजिक स्थिति निम्न है। लेकिन वे "अछूत" नहीं हैं। हालांकि, ओबीसी के लिए आरक्षण एक राष्ट्रीय विवाद बन गया था।

1978 में राष्ट्रपति ने बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में एक पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति की। आयोग के संदर्भ की मुख्य शर्तें सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े को परिभाषित करने के लिए

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डीएसबी परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डीएसबी परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

मानदंड निर्धारित करना और उनकी उन्नति के लिए उठाए जाने वाले कदमों की सिफारिश करना था। मंडल आयोग की रिपोर्ट (1980) में सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन के निर्धारण के लिए ग्यारह संकेतक सूचीबद्ध किए गए थे। इन संकेतकों को अलग–अलग मान दिए गए थे। सामाजिक संकेतकों में चार मानदंड थे, तीन शिक्षा संकेतक थे और चार आर्थिक मानदंड थे। प्रत्येक संकेतक को दिया गया भार मनमाना था। इस प्रकार, कुल मूल 22 अंक थे। ग्यारह अंक या उससे अधिक अंक अर्जित करने वाली सभी जातियों को पिछड़े के रूप में सूचीबद्ध किया गया था।

आयोग ने 31 दिसंबर 1980 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस आयोग की मुख्य सिफारिश ओबीसी के लिए 27% सीट/नौकरी आरक्षित करने की थी। मंडल आयोग की रिपोर्ट के बारे में अक्सर तीखी बहस होती थी। "इसमें कोई निश्चितता नहीं थी, सबसे पहले, कि मंडल आयोग द्वारा अपनाई गई पद्धति उन सभी जातियों को समाहित करने में सक्षम थी जो देश के भीतर मौजूद होने का दावा करती हैं"। रिपोर्ट की विभिन्न कमियों के कारण और इसकी सिफारिशों को स्वीकार करने की अचानक घोषणा को तत्कालीन प्रधान मंत्री वीपी सिंह के एक राजनीतिक निर्णय के रूप में वर्णित किया गया है। पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण पर मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के सरकार के फैसले से छात्रों के एक वर्ग में नाराजगी थी। ऐसे में एससी और एसटी के लिए मौजूदा 22.5% आरक्षण कोटे में जाति के आधार पर अतिरिक्त 27% के लिए नौकरियों को आरक्षित करने के निर्णय ने युवाओं में और निराशा पैदा की। मंडल आयोग ने जाति को हमारे समाज की मूल इकाई के रूप में लेने का प्रयोग किया और इसलिए 'पिछड़े वर्गों' की पहचान 'वर्ग' के बजाय, जाति के आधार पर की।

"पिछड़ा वर्ग' शब्द भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(4), और 16(4) में आता है। अनुच्छेद 15 (4) केवल नागरिकों के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को संदर्भित करता है। संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अनुसार, राज्य सरकारें अपने नागरिकों के उन सभी पिछड़े वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण हेतु प्रावधान कर सकती हैं, जिनका राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

क्रीमी लेयर

अन्य पिछड़ा वर्ग के कुछ समूहों में, व्यक्तियों का एक वर्ग आरक्षण के लाभों का उपयोग करता है और उनके बच्चे उच्च सामाजिक–आर्थिक स्थिति प्राप्त करते हैं। पुनः, एक ही परिवार के सदस्य/बच्चे आरक्षण की सुविधाओं का उपयोग करते हैं। पिछड़े वर्गों के बीच संपन्न लोगों की ये लगातार बढ़ती ऊपरी परत पिछड़े वर्गों के भीतर एक अगड़ा वर्ग बनाती है। इस ऊपरी परत को "क्रीमी लेयर" कहा जाता है। इस प्रकार की ऊपरी परत अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल लगभग सभी जातियों में प्रचलित है।

क्रीमी लेयर की पहचान और अयोग्यता भारतीय संविधान द्वारा निर्धारित मापदंडों से की जाती है। जाति–आधारित प्रणाली में आर्थिक मानदंड को हम वर्ग कह सकते हैं। "क्रीमी लेयर" भी एक अर्ध–कानूनी शब्द है जो सुप्रीम कोर्ट के कई फैसलों में सामने आया है, जिसकी शुरुआत 1976 के मामले में जस्टिस कृष्णा अय्यर के फैसले के साथ हुई थी (केरल राज्य बनाम एनएम थॉमस में)। इसका सबसे प्रसिद्ध आह्वान 1992 में इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ ("मंडल केस" के रूप में जाना जाता है) के मामले में था, जिसमें न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी ने अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण से क्रीमी लेयर को बाहर करने का आदेश जारी किया था।

अन्य पिछड़ा वर्ग (या सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ा वर्ग) के लिए आरक्षण 13 अगस्त 1990 को ''मंडल आयोग'' के नाम से लोकप्रिय द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग की सिफारिशों के आधार पर केंद्र सरकार द्वारा पेश किया गया था। ये आरक्षण भारत सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के तहत रोजगार से संबंधित हैं। मंडल आयोग की अनुशंसा और 13 अगस्त 1990 को जारी कार्यालय ज्ञापन में 'क्रीमी लेयर' का कोई उल्लेख नहीं है। ''क्रीमी लेयर'' की अवधारणा इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के न्यायिक निर्णय से पैदा हुई थी। भारत संघ (AIR अप्रैल 1993 SC. 477)। इंदिरा साहनी मामले में मुकदमे के दौरान याचिकाकर्ताओं ने, जो ओबीसी के लिए आरक्षण लागू करने के खिलाफ थे, ने अपनी एक दलील दी कि आरक्षण का लाभ पिछड़ा वर्ग के कुछ वर्गों को मिलेगा जो सामाजिक और शैक्षिक रूप से उन्नत हैं, जबकि सुप्रीम कोर्ट ने गहन विचार–विमर्श के बाद याचिकाकर्ताओं की याचिका पर विचार करते हुए इंदिरा साहनी मामले में अपने फैसले में एक 'साधन परीक्षण' का प्रस्ताव रखा, यानी उन व्यक्तियों (पिछड़े वर्गों से) को बाहर करने के उद्देश्य से एक आय सीमा लागू करना, जिनकी आय एक निश्चित सीमा से ऊपर है।

अन्य पिछड़े वर्ग में क्रीमी लेयर की अवधारणा

इंदिरा साहनी मामले में निर्णय सुनाते समय पहले मुद्दे के संबंध में, न्यायमूर्ति पांडियन को छोड़कर, सभी आठ माननीय न्यायाधीशों का विचार था कि ओबीसी के लिए आरक्षण की अनुमति दी जानी चाहिए, बशर्ते कि उनमें से क्रीमी लेयर को तुरंत हटा दिया जाए। मुख्य न्यायाधीश कानिया, वेंकटचलैया, अहमदी और जीवन रेड्डी ने सोचा कि पिछड़े वर्गों की उचित पहचान के लिए क्रीमी लेयर आवश्यक है। थॉमेन ने पिछड़े वर्गों से बहिष्करण के लिए कुछ आर्थिक स्तर की प्राप्ति को स्वीकार किया। कुलदीप सिंह ने पिछड़े वर्गों के संपन्न वर्ग को दूर करने के लिए परीक्षा का मतलब स्वीकार किया। सहाय ने उचित आय, संपत्ति या स्थिति मानदंड के माध्यम से बहिष्कार में एक सामाजिक उद्देश्य पाया।

इंदिरा के मामले में अधिकांश न्यायाधीशों ने कहा कि उनकी राय में, ''यह क्रीमी लेयर टेस्ट की अनुमति या वांछनीयता का सवाल नहीं है, बल्कि सच्चे पिछड़े वर्गों के एक वर्ग की उचित और अधिक उपयुक्त पहचान आवश्यक है। उन्होंने आगे कहा कि वर्ग अवधारणा का अर्थ कुछ सामान्य लक्षणों वाले कई व्यक्तियों को दर्शाता है जो उन्हें दूसरों से अलग करते हैं। अनुच्छेद 16 के खंड (4) के तहत पिछड़े वर्ग में, यदि जोड़ने वाली कड़ी सामाजिक पिछड़ापन है, तो यह मोटे तौर पर दिए गए वर्ग में समान होना चाहिए। यदि कुछ संख्याएँ सामाजिक रूप से बहुत उन्नत हैं (जिसका अर्थ आवश्यक रूप से आर्थिक रूप से और शैक्षिक रूप से भी हो सकता है) तो उनके और शेष वर्ग के बीच जोड़ने वाला धागा टूट जाता है। अकेले उन्हें छोड़कर वर्ग एक सच्चा पिछड़ा वर्ग बन जाता है। उन्होंन आगे कहा कि उनके बीच की रेखा खींचने में कठिनाई होती है। यह भी कहा गया कि रेखा खींचते समय यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इसका परिणाम एक को दूर करने में नहीं है। अदालत ने कहा कि बहिष्कार का आधार केवल आर्थिक नहीं होना चाहिए, जब तक कि आर्थिक उन्नति इतनी अधिक न हो कि इसका अर्थ सामाजिक उन्नति न हो जाए।

ओबीसी के लिए आरक्षण से संबंधित कानूनी स्थिति को अंतिम रूप से निपटाने के लिए नौ–न्यायाधीशों की एक विशेष पीठ का गठन आवश्यक हो गया। पीठ ने ओबीसी के लिए आरक्षण को संवैधानिक पाया, लेकिन क्रीमी लेयर को इसके लाभ से बाहर करने के लिए कहा। ओबीसी से सामाजिक रूप से उन्नत व्यक्तियों/वर्गों को बाहर करने के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के संदर्भ में, भारत सरकार ने न्यायमूर्ति आरएन प्रसाद और तीन अन्य सदस्यों की अध्यक्षता में एक

विशेषज्ञ समिति का गठन किया, जिसमें एक सामाजिक वैज्ञानिक और दो अधिकारी शामिल थे, जो 'अपवर्जन' के लिए मानदंड तैयार करते थे।

प्रसाद समिति ने क्रीमी–लेयर को इस प्रकार परिभाषित किया है .... जब कोई व्यक्ति सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन की विशेषताओं को दूर करने में सक्षम हो गया है और उसने रोजगार हासिल कर लिया है या खुद को उच्च स्तर के किसी व्यापार/पेशे में लगा लिया है ... उस स्तर पर उसे आम तौर पर अपने लिए आरक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।

क्रीमी लेयर की अवधारणा को इंद्रा साहनी मामले में पेश किया गया था। अदालत ने कहा कि नौकरी में आरक्षण के रूप में सुरक्षात्मक भेदभाव को इस तरह से बनाया जाना चाहिए कि पिछड़े वर्ग के सबसे योग्य वर्ग को लाभ मिले। पिछड़े वर्ग की पहचान की प्रक्रिया इस हद तक पूर्ण नहीं हो सकती कि उक्त वर्ग का प्रत्येक सदस्य समान रूप से पिछड़ा हो। वर्ग में ही असमानताएं होना लाजमी है। हो सकता है कि वर्ग के कुछ सदस्यों ने व्यक्तिगत रूप से पिछड़ेपन की बाधाओं को पार कर लिया हो, लेकिन वर्ग की पहचान करते समय वे सामूहिकता के भीतर आ गए हों यह अक्सर यह देखा गया है कि पिछड़े वर्ग में तुलनात्मक रूप से अमीर व्यक्ति भले ही उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए हों, सामाजिक रूप से भेदभाव किए बिना समाज में आगे बढ़ने में सक्षम हैं। पिछड़े वर्ग के सदस्यों को श्रेष्ठ और निम्न में विभेदित किया जाता है। उच्च वर्ग द्वारा उन पर जो भेदभाव किया जाता था, वह पिछड़े वर्ग के संपन्न सदस्यों द्वारा उक्त वर्ग के गरीब सदस्यों पर किया जाता है। नौकरी में आरक्षण जैसे विशेष विशेषाधिकारों का लाभ ज्यादातर पिछड़े वर्ग के अमीर या अधिक संपन्न वर्ग द्वारा उपभोग किया जाता है और उनमें से गरीब और वास्तव में पिछड़ा वर्ग गरीब और अधिक पिछड़ा होता रहता है। यह केवल पिछड़े वर्ग के निम्नतम स्तर पर है जहाँ अभाव के मानकों और पिछड़ेपन की सीमा को एक समान किया जा सकता है। पिछड़े वर्गों की आबादी की तुलना में नौकरियां इतनी कम हैं कि उन्हें राज्य–सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना मुश्किल है। इसलिए यह आवश्यक है कि आरक्षण का लाभ पिछड़े वर्ग के सबसे गरीब और सबसे कमजोर वर्ग तक पहुंचे। नौकरी में आरक्षण से पिछड़े वर्ग को लाभान्वित करने के लिए के लिए क्रीमी लेयर आर्थिक आवश्यक है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय/निर्देश के अनुसार केंद्र सरकार ने भी सामाजिक और शैक्षिक रूप से उन्नत सदस्यों (क्रीमी लेयर) के बाद ही आरक्षण लागू करने का निर्णय लिया। "क्रीमी लेयर" की पहचान के लिए सामाजिक–आर्थिक मानदंड तैयार करने के लिए, भारत सरकार ने एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया (अधिसूचना संख्या 120/10/93–बीसीसी (सी) भारत सरकार, कल्याण मंत्रालय दिनांक 22 फरवरी, 1993)। विशेषज्ञ समिति के सदस्य निम्नलिखित थे:

1. श्री रामानंदन प्रसाद, न्यायाधीश, पटना उच्च न्यायालय – अध्यक्ष
2. सर एमएल सहारा सामाजिक वैज्ञानिक, पूर्व अध्यक्ष यूपीएससी – सदस्य
3. श्री पी एस कृष्णन, पूर्व सचिव, कल्याण मंत्रालय भारत सरकार – सदस्य
4. श्री आरजे मजीठिया पूर्व अध्यक्ष राजस्व बोर्ड राजस्थान सरकार – सदस्य–सचिव

इस समिति ने 'क्रीमी लेयर फॉर्मूला' के बारे में अपने फैसले में जस्टिस पांडियन द्वारा व्यक्त विचारों को भी ध्यान में रखा है। इसने क्रीमी लेयर फॉर्मूले के संवैधानिक प्रभाव को भी लिया है, चूंकि क्रीमी लेयर की अवधारणा पहली बार विकसित की गई थी, इसलिए समिति ने भविष्य में इसकी समीक्षा के दायरे को स्वीकार किया।

रामानंदन समिति की सिफारिश

श्रेणी का विवरण	जिन पर बहिष्करण का नियम लागू होगा।
I संवैधानिक पद	पुत्र और पुत्री (ए) भारत के राष्ट्रपति (बी) भारत के उपराष्ट्रपति (सी) सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश (डी) यूपीएससी और राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य, मुख्य चुनाव आयुक्त, भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (ई) समान प्रकृति के संवैधानिक पदों को धारण करने वाले व्यक्ति।
II सेवा श्रेणी A. अखिल भारतीय केंद्रीय और राज्य सेवाओं (सीधी भर्ती) के समूह क / कक्षा I के अधिकारी।	पुत्र और पुत्री (ए) माता–पिता, जिनमें से दोनों कक्षा I के अधिकारी हैं (बी) माता–पिता, जिनमें से कोई एक श्रेणी–I अधिकारी है (सी) माता–पिता, जिनमें से दोनों एक श्रेणी–I अधिकारी हैं, लेकिन उनमें से एक की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से ग्रस्त है। (डी) माता–पिता, जिनमें से कोई एक श्रेणी–I अधिकारी है और माता–पिता की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से पीड़ित होते है और ऐसी मृत्यु या ऐसी अक्षमता से पहले संयुक्त राष्ट्र, आईएमएफ, विश्व बैंक इत्यादि जैसे किसी भी अंतरराष्ट्रीय संगठन में रोजगार का लाभ मिला है, कम से कम 5 वर्ष की अवधि तक। (ई) माता–पिता, जिनमें से दोनों वर्ग I के अधिकारी हैं, मर जाते हैं या स्थायी अक्षमता का शिकार होते हैं और ऐसी मृत्यु या दोनों की ऐसी अक्षमता से पहले, दोनों में से किसी को भी संयुक्त राष्ट्र, आईएमएफ, विश्व बैंक, आदि जैसे किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संगठन में रोजगार का लाभ मिला है। कम से कम 5 वर्ष की अवधि के लिए। बशर्ते कि बहिष्करण का नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगाः (ए) माता–पिता के बेटे और बेटियां जिनमें से या दोनों कक्षा–I के अधिकारी हैं और ऐसे माता–पिता की मृत्यु हो जाती है या स्थायी रूप से अक्षम हो जाते हैं। (बी) ओबीसी श्रेणी से संबंधित एक महिला की शादी प्रथम श्रेणी के अधिकारी से हुई है, और वह खुद नौकरी के लिए आवेदन करना पसंद कर सकती है।
B. केंद्रीय और राज्य सेवाओं (सीधी भर्ती) के समूह बी / द्वितीय श्रेणी के अधिकारी	पुत्र और पुत्री (ए) माता–पिता दोनों जो द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं। (बी) माता–पिता जिनके केवल पति द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं और वह 40 वर्ष या उससे पहले की आयु में कक्षा I में प्रवेश करते हैं।

	(सी) माता–पिता, जिनमें से दोनों द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं और उनमें से एक की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से ग्रस्त है और उनमें से किसी एक को संयुक्त राष्ट्र, आईएमएफ, विश्व बैंक इत्यादि जैसे किसी भी अंतरराष्ट्रीय संगठन में रोजगार का लाभ मिला है। ऐसी मृत्यु या स्थायी अक्षमता से कम से कम 5 वर्ष पहले (डी) माता–पिता जिनके पति श्रेणी I अधिकारी हैं (सीधी भर्ती या पूर्व–चालीस पदोन्नत) और पत्नी एक वर्ग II की अधिकारी है और पत्नी की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से ग्रस्त है तथा (ई) माता–पिता, जिनमें से पत्नी श्रेणी I की अधिकारी (सीधी भर्ती या पूर्व पदोन्नत) है और पति वर्ग II का अधिकारी है और पति की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से ग्रस्त है। बशर्ते कि बहिष्करण का नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगाः के पुत्र और पुत्री पर (ए) माता–पिता जिनमें से दोनों द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं और उनमें से एक की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से ग्रस्त है। (बी) माता–पिता, जिनमें से दोनों द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं और दोनों की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता का सामना करना पड़ता है, भले ही उनमें से किसी को भी संयुक्त राष्ट्र, आईएमएफ, विश्व बैंक आदि जैसे किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संगठन में रोजगार का लाभ मिला हो। उनकी मृत्यु या स्थायी अक्षमता से कम से कम 5 वर्ष पहलेः
C. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों आदि में कर्मचारी।	इस श्रेणी में उपरोक्त A व B में उल्लिखित मानदंड सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, बैंकों, बीमा संगठनों, विश्वविद्यालयों, आदि में समकक्ष या तुलनीय पदों वाले अधिकारियों और समकक्ष या तुलनीय पदों और पदों पर भी लागू होंगे। निजी रोजगार के तहत, इन संस्थानों में समकक्ष या तुलनीय आधार पर पदों के मूल्यांकन के लंबित होने तक, नीचे श्रेणी VI में निर्दिष्ट मानदंड इन संस्थानों के अधिकारियों पर लागू होंगे।
III अर्धसैनिक बलों सहित सशस्त्र बल (सिविल पद धारण करने वाले व्यक्ति शामिल नहीं हैं)	माता–पिता के पुत्र (पुत्र) और पुत्री (पुत्रियां) या तो दोनों सेना में कर्नल और उससे ऊपर के पद पर हों या नौसेना और वायु सेना और अर्धसैनिक बलों में समकक्ष पदों पर हों उसे उपलब्ध करायाः – (i) यदि किसी सशस्त्र बल अधिकारी की पत्नी स्वयं सशस्त्र बलों (अर्थात विचाराधीन श्रेणी) में है तो अपवर्जन का नियम तभी लागू होगा जब वह स्वयं कर्नल के पद पर पहुंच गया हो

	(ii) पति और पत्नी के कर्नल से नीचे के सेवा रैंक को एक साथ नहीं जोड़ा जाएगा (iii) यदि सशस्त्र बलों में एक अधिकारी की पत्नी नागरिक रोजगार में है, तो इसे बहिष्करण के नियम को लागू करने के लिए ध्यान में नहीं रखा जाएगा जब तक कि वह मद संख्या II के तहत सेवा श्रेणी में नहीं आती है, इस मामले में मानदंड और शर्तें उसमें उल्लिखित स्वतंत्र रूप से उस पर लागू होगा।
IV. पेशेवर वर्ग और जो व्यापार और उद्योग में लगे हुए हैं (i) एक डॉक्टर, वकील, चार्टर्ड एकाउंटेंट, आयकर सलाहकार, वित्तीय या प्रबंधन सलाहकार, दंत सर्जन, इंजीनियर, वास्तुकार, कंप्यूटर विशेषज्ञ, फिल्म कलाकार और अन्य फिल्म पेशेवर, लेखक, नाटककार, खिलाड़ी, खेल के रूप में पेशे में लगे व्यक्ति पेशेवर, मीडिया पेशेवर या समान स्थिति का कोई अन्य व्यवसाय। (श्रेणी VI के लिए निर्दिष्ट मानदंड लागू होंगे)	(श्रेणी VI के लिए निर्दिष्ट मानदंड लागू होंगे)
(ii) व्यापार, व्यवसाय और उद्योग में लगे व्यक्ति।	(श्रेणी VI के लिए निर्दिष्ट मानदंड लागू होंगे) व्याख्या: (i) जहां पति किसी पेशे में है और पत्नी द्वितीय श्रेणी या निम्न श्रेणी के रोजगार में है, आय/धन परीक्षण पति की आय के आधार पर लागू होगा। (ii) यदि पत्नी किसी पेशे में है और पति द्वितीय श्रेणी या निम्न रैंक के पद पर कार्यरत है, तो आय/धन मानदंड केवल पत्नी की आय के आधार पर लागू होगा और पति की आय के साथ यह नहीं जोड़ा जाएगा।
V. संपत्ति के मालिक A. कृषि धारित	संबंधित व्यक्तियों के पुत्र और पुत्रियों का स्वामित्व है। (ए) केवल सिंचित भूमि जो वैधानिक क्षेत्र के 85% के बराबर या उससे अधिक है, या (बी) सिंचित और असिंचित दोनों भूमि, निम्नानुसार है: i. बहिष्करण का नियम लागू होगा जहां पूर्व शर्त मौजूद है कि सिंचित क्षेत्र (एक सामान्य भाजक के तहत एक ही प्रकार के लिए लाया गया है) सिंचित भूमि के लिए वैधानिक उच्चतम सीमा का 40% या अधिक (इसकी गणना असिंचित हिस्से को छोड़कर की जा रही है)) यदि यह पूर्व शर्त 40% से कम न हो तो केवल असिंचित भूमि के क्षेत्रफल को ही ध्यान में रखा जाएगा। यह मौजूदा रूपांतरण फार्मूले के आधार पर असिंचित भूमि को सिंचित प्रकार में परिवर्तित करके किया जाएगा। असिंचित भूमि से इस प्रकार गणना किए गए सिंचित क्षेत्र को सिंचित भूमि के वास्तविक क्षेत्र में जोड़ा जाएगा और यदि इस तरह के संयोजन के बाद सिंचित भूमि के संदर्भ

	में कुल क्षेत्रफल सिंचित भूमि के लिए वैधानिक अधिकतम सीमा का 80% या अधिक है, तो नियम बहिष्करण लागू होगा और अयोग्यता होगी। ii. बहिष्करण का नियम लागू नहीं होगा यदि किसी परिवार की भूमि विशेष रूप से असिंचित है।
B. वृक्षारोपण (i) कॉफी, चाय, रबर आदि (ii) आम, साइट्रस, सेब आदि	नीचे श्रेणी VI में निर्दिष्ट आय/धन का मानदंड लागू होगा। को कृषि धारित माना जाता है और इसलिए इस श्रेणी के तहत उपरोक्त A में मानदंड लागू होंगे।
ग. शहरी क्षेत्रों या शहरी समूहों में खाली भूमि और/या भवन	(नीचे श्रेणी VI में निर्दिष्ट मानदंड लागू होंगे)। व्याख्याः भवन का उपयोग आवासीय, औद्योगिक या वाणिज्यिक उद्देश्य और ऐसे ही दो या अधिक ऐसे उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है।
VI. आय/धन परीक्षण	पुत्र और पुत्री (i) रुपये की सकल वार्षिक आय वाले व्यक्ति। 1 लाख या उससे अधिक या लगातार तीन वर्षों की अवधि के लिए संपत्ति कर अधिनियम से अधिक संपत्ति रखने वाले। (ii) श्रेणी I, II, III, और VA के व्यक्ति जो आरक्षण के लाभ से वंचित नहीं हैं, लेकिन धन के अन्य स्रोतों से आय रखते हैं जो उन्हें ऊपर (A) में उल्लिखित आय/धन मानदंड के भीतर लाएंगे। व्याख्याः (i) वेतन या कृषि भूमि से होने वाली आय को जोड़ा नहीं जाएगा (ii) रुपये के संदर्भ में आय मानदंड को हर तीन साल में इसके मूल्य में बदलाव को ध्यान में रखते हुए संशोधित किया जाएगा। हालाँकि, यदि स्थिति इतनी माँगती है, तो अंतराल कम हो सकता है। स्पष्टीकरणः इस अनुसूची में जहां कहीं भी अभिव्यक्ति "स्थायी अक्षमता" आती है। इसका अर्थ होगा अक्षमता जिसके परिणामस्वरूप एक अधिकारी को सेवा से बाहर कर दिया जाता है

रामानंदन समिति की मुख्य बातें

रामानंदन समिति ने अन्य पिछड़ा वर्ग में विकसित श्रेणी में आने वाले लोगों पर 'क्रीमी लेयर फॉर्मूले' के तहत बहिष्करण का नियम लागू कर दिया, जिससे इन लोगों को विशेष सेवाए प्राप्त नहीं हो पाएगी। समिति ने निम्न पदों और स्थिति पर बैठे व्यक्तियों के पुत्र और पुत्रियों पर बहिष्करण का नियम लागू किया।

1. संवैधानिक पदों पर बैठे व्यक्ति – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, यूपीएससी और राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य, मुख्य चुनाव आयुक्त, भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक शामिल है
2. अखिल भारतीय केंद्रीय और राज्य सेवाओं (सीधी भर्ती) के समूह क / कक्षा I श्रेणी में माता या पिता या दोनों कार्यरत हो.

परन्तु बहिष्करण का नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगा:

i. माता–पिता के बेटे और बेटियां जिनमें से या दोनों कक्षा– I के अधिकारी हैं और ऐसे माता–पिता की मृत्यु हो जाती है या स्थायी रूप से अक्षम हो जाते हैं।

ii. ओबीसी श्रेणी से संबंधित एक महिला की शादी प्रथम श्रेणी के अधिकारी से हुई है, और वह खुद नौकरी के लिए आवेदन करना पसंद कर सकती है।

3. केंद्रीय और राज्य सेवाओं (सीधी भर्ती) के समूह बी / द्वितीय श्रेणी में कार्यरत माता–पिता दोनों कार्यरत हो.

परन्तु बहिष्करण का नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगा:

i. माता–पिता जिनमें से दोनों द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं और उनमें से एक की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता से ग्रस्त है।

ii. माता–पिता, जिनमें से दोनों द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हैं और दोनों की मृत्यु हो जाती है या स्थायी अक्षमता का सामना करना पड़ता है, भले ही उनमें से किसी को उनकी मृत्यु या स्थायी अक्षमता से कम से कम 5 वर्ष पहले संयुक्त राष्ट्र, आईएमएफ, विश्व बैंक आदि जैसे किसी भी अंतर्राष्ट्रीय संगठन में रोजगार का लाभ मिला हो।

4. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों आदि में कर्मचारी – इस श्रेणी में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, बैंकों, बीमा संगठनों, विश्वविद्यालयों, आदि में समकक्ष या तुलनीय पदों वाले अधिकारियों और समकक्ष या तुलनीय पदों और पदों पर भी लागू होंगे। निजी रोजगार के तहत, इन संस्थानों में समकक्ष या तुलनीय आधार पर पदों के मूल्यांकन के लंबित होने तक, श्रेणी VI में निर्दिष्ट मानदंड इन संस्थानों के अधिकारियों पर लागू होंगे।

5. अर्धसैनिक बलों सहित सशस्त्र बल में कार्यरत – माता–पिता या दोनों सेना में कर्नल और उससे ऊपर के पद पर हों या नौसेना और वायु सेना और अर्धसैनिक बलों में समकक्ष पदों पर हों।

6. पेशेवर वर्ग और व्यापार और उद्योग में कार्यरत – एक डॉक्टर, वकील, चार्टर्ड एकाउंटेंट, आयकर सलाहकार, वित्तीय या प्रबंधन सलाहकार, दंत सर्जन, इंजीनियर, वास्तुकार, कंप्यूटर विशेषज्ञ, फिल्म कलाकार और अन्य फिल्म पेशेवर, लेखक, नाटककार, खिलाड़ी, खेल के रूप में पेशे में लगे व्यक्ति, मीडिया पेशेवर या समान स्थिति का कोई अन्य व्यवसाय करते हों।

7. संपत्ति के मालिक – माता–पिता भूमि के मालिक हो जहां सिंचित भूमि वैधानिक क्षेत्र के 85% के बराबर या उससे अधिक हो।

8. आय / धन परीक्षण – माता–पिता जिनकी सकल वार्षिक आय 1 लाख (जो वर्तमान में 8 लाख है) या उससे अधिक या लगातार तीन वर्षों की अवधि के लिए संपत्ति कर अधिनियम से अधिक संपत्ति रखते हो।

निष्कर्ष

संवैधानिक कानून लोक सेवाओं में पदों की नियुक्ति के मामले में नागरिकों के पिछड़े वर्गों को अधिमान्य उपचार प्रदान करता है। देश के सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16(4) के तहत आरक्षण के उद्देश्य से पिछड़े वर्गों का पता लगाने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा तैयार किए गए विभिन्न मानदंडों की वैधता पर विचार किया। 1992 में पिछड़े वर्ग के लिए नौकरी आरक्षण नीति की वैधता और भारत में नागरिकों के पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिए मंडल आयोग द्वारा तैयार किए गए मानदंडों की जांच करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं इस संबंध में क्रीमी लेयर सिद्धांत अवधारणा तैयार की थी।

क्रीमी लेयर भारतीय राजनीति में इस्तेमाल किया जाने वाला एक शब्द है जो अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के अपेक्षाकृत धनी और बेहतर शिक्षित सदस्यों को संदर्भित करता है, जो सरकार द्वारा प्रायोजित शैक्षिक और व्यावसायिक लाभ कार्यक्रमों के लिए पात्र नहीं हैं। "क्रीमी लेयर" की अवधारणा केवल ओबीसी के लिए है।

एक बार जब पिछड़े वर्ग का सदस्य एक उन्नत सामाजिक स्तर पर पहुँच जाता है तो वह पिछड़े वर्ग से संबंधित नहीं रहेगा और उसे बाहर निकालना होगा। यदि पिछड़े वर्ग के कुछ व्यक्ति और परिवार संपन्न जाति के साथ प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता हासिल कर लेते हैं, तो वे पिछड़ा वर्ग कहलाने के हकदार नहीं हैं। यदि पिछड़े वर्ग के कुछ सदस्य स्वयं को ऊपर उठाने के लिए आवश्यक वित्तीय शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, तो संविधान आरक्षण के संरक्षण का प्रावधान नहीं करता है। जब तक जाति के इस संपन्न वर्ग को उस जाति समूह से बाहर नहीं किया जाता है, तब तक पिछड़े वर्ग की उचित पहचान नहीं हो सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Chauhan, C. Education and caste in India. Asia Pacific Journal of Education, (2008).
2. Panandiker, P. The Politics of Backwardness : Reservation Policy of India. Delhi : Konark Publishers, (1997).
3. Rodrigues, A. J. Anomalies in Implementation of the 'Creamy Layer' Segment in the Realisation of Benefits under Reservation Policies in India. Christ University Law Journal, (2011).
4. Agarwal, S.P., & Agarwal, J.C. Educational and Social uplift of Backward Classes : At what cost and how ? New Delhi : Concept Publishing Company, (1991).
5. Bhaskar , A., & Kumar, S. Promotions, Creamy Layer, and the Reservation Debate, (2020).
6. Goela, V. Who belongs to the "creamy layer"? Affirmative action in Canada and India. University of Toronto, (2008).
7. Moodie, M. Upward mobility in a forgotten tribe: Notes on the "creamy layer" problem. Journal of Global and Historical Anthropology, (2013).
8. Nagarajan, K. Compensatory Discrimination in India Sixty Years After Independence. Washington and Lee Journal of Civil Rights and Social Justice, (2009).

9. Nath, P. Employment Scenario and the Reservation Policy. Economic & Political Weekly, (2019).
10. Prasad, A. Reservational Justice to Other Backward Classes. New Delhi : Deep and Deep Publication, (1997).
11. Sahai, S. The Relevance of Caste in Contemporary India, (2018).
12. Sharma, O. P. Right to Reservation as an Emerging Fundamental Rights, (2013).
13. Verma, D. K. Politics of Social Backwardness and Empowerment of Other &. Journal of Social and Political Studies, (2011).
14. Yadav, A. The Concept of Creamy Layer as a tool for opposing reservation. Voice of Dalit, (2011).

Madhya Bharti

मध्य भारती
मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

Humanities and Social Sciences ISSN: 0974-0066

राजनीतिक सहभागिता: लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण आयाम

अविनाश जाटव
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
डीएसबी परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
प्रो. नीता बोरा शर्मा
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डीएसबी परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सारांश -

लोकतंत्र समकालीन विश्व में सरकार की सबसे लोकप्रिय प्रणाली है क्योंकि यह लोगों की इच्छा पर आधारित है तथा साथ ही ये एक ऐसी शासन पद्धति है जो राजनीतिक सहभागिता और नागरिक जुड़ाव को सर्वाधिक प्रोत्साहित करती है। लोकतंत्र नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में और विभिन्न स्तरों पर विभिन्न माध्यमों से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता है। लोकतंत्र में विश्वास और लोकतांत्रिक रवैया आधुनिक समाज का एक अनिवार्य पहलू है और लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र तक पहुँचाने के लिए नागरिकों की सहभागिता का महत्वपूर्ण स्थान है। सहभागिता मन की एक अवस्था के साथ–साथ एक अभ्यास भी है। राजनीतिक वैज्ञानिकों के बीच एक आम सहमति है कि राजनीतिक प्रक्रिया में अधिक सहभागिता लोकतंत्र के लिए लाभदायक और आवश्यक है। राजनीतिक सहभागिता के लिए शक्ति–आधारित और प्रभाव–आधारित दोनों रूपों का होना जरुरी हैं। लोकतंत्र राजनीतिक गतिविधियों में सहभागिता की अवधारणा पर आधारित है। लोकतांत्रिक सिद्धांत विशेष रूप से या तो अप्रत्यक्ष रूप से या स्पष्ट रूप से व्यापक नागरिक सहभागिता की आवश्यकता को मानते हैं। राजनीतिक सहभागिता को ऐसी गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सरकारी कार्रवाई को प्रभावित करने का इरादा है या तो सीधे सार्वजनिक नीति के कार्यान्वयन को प्रभावित करके या अप्रत्यक्ष रूप से उन नीतियों के लोगों के चयन को प्रभावित करके। यह पत्र लोकतंत्र व राजनीतिक सहभागिता दोनो अवधारणाओं का विश्लेषण करता है और उनके बीच के संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।

प्रस्तावना - लोकतंत्र की अवधारणा का तात्पर्य है कि शासन का अंतिम अधिकार स्वयं लोगों के पास होना चाहिए। 'लोगों द्वारा शासन' लोकतंत्र का शाब्दिक अर्थ है। लोकतंत्र शासन का एक रूप है जिसमें लोग सीधे और प्रतिनिधियों के माध्यम से सत्ता का प्रयोग करते हैं जो लोगों द्वारा बार–बार चुने जाते हैं। प्राचीन राज्यों में, प्रत्यक्ष लोकतंत्र संभव था क्योंकि समुदाय के सभी वयस्क सदस्य आसानी से निर्णय लेने में भाग ले सकते थे। जनसंख्या वृद्धि और राजनीतिक सीमाओं के विस्तार के कारण प्रत्यक्ष लोकतंत्र समकालीन राजनीतिक व्यवस्था में संभव नहीं है। यही कारण है कि विश्व के विभिन्न भागों में प्रतिनिधियात्मक लोकतंत्र ने प्रत्यक्ष लोकतंत्र का स्थान ले लिया है। प्रतिनिधियात्मक लोकतंत्र एक अप्रत्यक्ष लोकतंत्र है जहां लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा संप्रभुता व्यक्त की जाती है। दूसरे शब्दों में, लोग अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिनिधित्व प्रणाली के माध्यम से अपनी संप्रभु शक्ति का प्रयोग करते हैं। राजनीतिक सहभागिता के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक मुख्यतः तीन गुण बुद्धि, आत्म–नियंत्रण और विवेक का प्रयोग करे जिससे राजनितिक व्यवस्था में उचित सहभागिता बढ़ाई जा सके।[1]

राजनीतिक सहभागिता वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति अपने समुदाय के राजनीतिक जीवन में संलग्न होता है और उसे यह तय करने का मौका मिलता है कि समाज के सामान्य लक्ष्य क्या हैं और उन्हें पूरा करने का सबसे प्रभावी साधन क्या है। राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक गतिविधि का एक पहलू है जो इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि लोग राजनीति में कैसे संलग्न होते हैं। यह एक स्वैच्छिक गतिविधि है और इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई भी भाग ले सकता है। लोग विभिन्न तरीकों से राजनीति में भाग ले सकते हैं, जैसे कि राजनीतिक नेताओं को चुनकर या उनका चुनाव करके, नीतियां बना के, सामुदायिक आयोजनों में भाग ले कर और अन्य नागरिक कार्य करके।[2]

राजनीतिक सहभागिता लोकतंत्र का मूल सिद्धांत है। राजनीतिक सहभागिता नागरिकों के जीवन को प्रभावित करने वाली सरकारी प्रक्रियाओं में व्यक्तियों और समूहों की सक्रिय भागीदारी है। अलग तरीके से कहें तो जब नागरिक स्वयं

सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों के निर्माण और कार्यान्वयन की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं तो उनकी गतिविधि को राजनीतिक सहभागिता कहा जाता है।[3] राजनीतिक सहभागिता में गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है जो लोगों को राजनीति की स्थिति और इसे चलाने के तरीके पर अपने विचार बनाने और व्यक्त करने की अनुमति देती है, साथ ही उन निर्णयों को प्रभावित करती है जो सीधे उनके दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

एक दृष्टिकोण जो सहभागिता के गैर पारंपरिक तरीकों पर आधारित है। अपरंपरागत राजनीतिक सहभागिता के संदर्भ में एलन मार्श का कार्य सबसे महत्वपूर्ण और रोचक है। उन्होंने 'अपरंपरागत' राजनीतिक सहभागिता को मापने के लिए उपकरण विकसित किया। जिसमे मार्श ने 10 उत्तेजनाओं के एक समुच्चय से अवगत कराया, जैसे कि किराया और करों का भुगतान करने से इनकार करना, संपत्ति को नुकसान पहुंचाना, व्यवसाय, हिंसा, नारे, हड़ताल, बहिष्कार, नाकाबंदी और याचिकाएं। अधिकांश समाजों में जैसे–जैसे उदार लोकतांत्रिक संस्कृति और मूल्य विकसित होते हैं, यह निर्विवाद हो गया कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में व्यापक सहभागिता सच्चे लोकतंत्र के लिए एक पूर्व शर्त है।[4]

नीति निर्माण में जनता की सहभागिता सक्रिय राजनीतिक सहभागिता का एक रूप है। ऐसा इसलिए है क्योंकि लोग प्रतिक्रिया दे सकते हैं या सरकारों द्वारा बनाई गई नीतियों की आलोचना कर सकते हैं। साथ ही समुदाय की सक्रिय सहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार से प्रोत्साहन की भी आवश्यकता है क्योंकि विकास के क्षेत्र में जनभागीदारी का अभाव सरकार के लिए विकास कार्यक्रमों में तेजी लाना कठिन बना देता है।[5] व्यक्ति की सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि कुछ ऐसे चर हैं जो राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करते हैं। जिस हद तक नागरिक राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेते हैं, वह राजनीतिक जागरूकता के स्तर और राजनीतिक व्यवस्था में उनके विश्वास के स्तर से भी प्रभावित होता है।

लोकतंत्र और राजनीतिक सहभागिता- अवोलोवो और अलुको का तर्क है कि निर्णय लेने को प्रभावित करना और सत्ता पर नियंत्रण करना सभी समाजों में राजनीतिक सहभागिता का मौलिक लक्ष्य है, चाहे वह उन्नत हो या विकासशील। राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक व्यवस्था और राष्ट्र के समग्र विकास में अपना योगदान करने का एक साधन है। राजनीतिक सहभागिता लोकतांत्रिक शासन की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। एक लोकतांत्रिक प्रणाली के लिए आवश्यक है कि जनता नेताओं के चयन की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में पूरी तरह से भाग ले और सार्वजनिक नीतियों और दृष्टिकोणों को प्रभावी ढंग से प्रसारित करे। कोई भी शासन या राज्य जो लोकतांत्रिक होने का दावा करता है, अनिवार्य रूप से उच्च स्तर की प्रतिस्पर्धी पसंद, खुलेपन, नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता का आनंद लेना और सभी सामाजिक समूहों को शामिल करने वाली राजनीतिक सहभागिता को अपनाना चाहिए।[6]

मैकक्लोस्की का मानना है कि राजनीतिक सहभागिता में वे गतिविधियाँ शामिल हैं जिनके द्वारा समाज के सदस्य शासकों के चयन में और सार्वजनिक नीति के निर्माण में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सा लेते हैं। वह आगे बताते हैं कि राजनीतिक सहभागिता का सबसे सक्रिय रूप एक राजनीतिक दल में औपचारिक नामांकन, मतों का प्रचार और पंजीकरण, भाषण लेखन और भाषण निर्माण अभियान में काम करना और सार्वजनिक कार्यालयों के लिए प्रतिस्पर्धा करना है। गौबा ने मतदान, पद के लिए खड़े होने, राजनीतिक दल के लिए प्रचार करने या एक सामुदायिक परियोजना के प्रबंधन में योगदान आदि को शामिल करने के लिए राजनीतिक सहभागिता के पारंपरिक तरीके की पहचान की। उन्होंने यह कहते हुए निष्कर्ष निकाला कि विपक्ष या सार्वजनिक विरोध के कार्य में भी राजनीतिक सहभागिता शामिल होती है, जैसे अधिनियम में याचिका पर हस्ताक्षर करना, शांतिपूर्ण प्रदर्शन में भाग लेना, विरोध मार्च में शामिल होना, सविनय अवज्ञा और राजनीतिक शक्ति सभी राजनीतिक सहभागिता के रूप हैं।[7]

राजनीतिक सहभागिता एक गतिशील और लगातार विकसित होने वाली सामाजिक घटना है। कभी–कभी, लोग राजनीतिक रूप से सक्रिय प्रतीत होते हैं, इसलिए सहभागिता दर समय और स्थान के अनुसार भिन्न हो सकती है। राजनीतिक भागीदारी का प्रकार विभिन्न संस्कृतियों, राजनीतिक व्यवस्थाओं और अलग–अलग समय सीमा के बीच व्यापक रूप से भिन्न होता है।[8] इसके अलावा, राजनीतिक अलगाव हमेशा सभी लोगों और सभी समाजों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता है। राजनीतिक सहभागिता की तीव्रता से संबंधित कई कारकों की पहचान की गई हैः उदाहरण के लिए, लिंग, शिक्षा, धर्म, जाति, वर्ग, सामाजिक– आर्थिक स्तिथि और उम्र।[9]

जिन प्रक्रियाओं ने राजनीतिक सहभागिता के राजनीतिक और संस्थागत ढांचे को बदल दिया है उनमें शामिल हैंः

कल्याणकारी राज्य का विनियमन, प्रशासन और सामाजिक नीति का प्रबंधकीयकरण, निर्णय लेने की प्रक्रियाओं का अंतर्राष्ट्रीयकरण, और नीति निर्माण का स्थानीयकरण और अनौपचारिकीकरण।[10]

हालांकि, राजनीतिक सहभागिता को किसी देश (संसदीय क्षेत्र) के औपचारिक राजनीतिक संस्थागत ढांचे या उस ढांचे के भीतर पारंपरिक अभिनेताओं (राजनीतिक दलों, राजनीतिक अभिनेताओं, ट्रेड यूनियनों और संगठनों) से सीधे संबंधित होने की आवश्यकता नहीं है। राजनीतिक कार्यसूची या राजनीतिक परिणामों को प्रभावित करने के लिए, नागरिक अतिरिक्त–संसदीय गतिविधियों और अभिव्यक्तियों में संलग्न हो सकते हैं, जिन्हें कभी–कभी विरोध व्यवहार या ''अपरंपरागत'' राजनीतिक सहभागिता कहा जाता है।[11]

सहभागिता हर बड़ी या छोटी राजनीति का एक घटक है। सहभागिता एक जटिल घटना प्रतीत होती है जो विभिन्न सापेक्ष भारों के कई चरों पर निर्भर करती है। प्रासंगिक स्वतंत्र चरों को उन प्रभावों में समूहित किया जा सकता है जो अनिवार्य रूप से आंतरिक (मनोवैज्ञानिक और संज्ञानात्मक) और बाहरी (सामाजिक और राजनीतिक) हैं। राजनीतिक सहभागिता पर चर्चा करने के लिए टेरेल लोकतंत्र के तीन मॉडलों का उपयोग करता है। उत्तरदायी मॉडल, प्रतिभागी मॉडल और विचारशील मॉडल। उत्तरदायी मॉडल के अनुसार सहभागिता निर्णय लेने वाले लोगों को प्रभावित करने के प्रश्न के संबंध में है। प्रतिभागी मॉडल के अनुयायी दावा करते हैं कि भागीदारी निर्णयों का हिस्सा बनने में सक्षम होने के बारे में है। विचारशील मॉडल निर्णय लेने के तरीके के रूप में भागीदारी को परिभाषित करता है। तीन मॉडलों में इस बारे में अलग–अलग तर्क भी हैं कि सहभागिता वांछनीय क्यों है। उत्तरदायी मॉडल के भीतर वांछनीय परिणाम एक प्रणाली स्तर पर स्वाभाविक रूप से जवाबदेही है जिसकी व्याख्या व्यक्तिगत स्तर पर हितों की सुरक्षा के विचार के रूप में की जा सकती है। प्रतिभागी मॉडल आत्म–पूर्ति और व्यक्तिगत विकास को मानता है कि भागीदारी क्यों महत्वपूर्ण है। दूसरी ओर विचारशील मॉडल लोकतांत्रिक प्रणाली की वैधता की वकालत करता है। राजनीतिक सहभागिता का मतलब सिर्फ यह नहीं है कि निजी नागरिक चुनावों में मतदान करने के लिए आ रहे हैं। राजनीतिक सहभागिता किसी भी वैध व्यवहार को संदर्भित करती है जिसका उद्देश्य सरकार के निर्णयों और कार्यों को प्रभावित करना है।[12]

लोकतंत्र को अक्सर एक आदर्श या सिद्धांत के रूप में समझा जाता है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के तहत, लोग प्रत्यक्ष रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। प्रतिनिधि लोकतंत्र के तहत, लोग अपनी ओर से निर्णय लेने के लिए अपने प्रतिनिधि को चुनते हैं। जहां प्रतिनिधियात्मक लोकतांत्रिक सिद्धांत में यह आवश्यक है, कि प्रतिनिधि अपने कार्यों के लिए जिम्मेदार हो और यह सुनिश्चित करें कि वे हमेशा लोगों के सर्वोत्तम हित में कार्य करें।[13] लोकतंत्र का एक मापदंड यह भी है कि सरकार लोगों के समर्थन और प्रत्यक्ष सहभागिता के आधार पर बनाई जाती है। साथ ही लोकतंत्र केवल इस बारे में नहीं है कि सरकार कैसे बनाई जाती है क्योंकि लोगों ने इसे चुना है बल्कि यह भी है कि वे सरकारी नीतियों को निर्धारित करने में कैसे भाग लेते हैं। सरकार की नीतियों के निर्धारण में लोगों की सहभागिता लोकतंत्र के प्रत्यक्ष और प्रतिनिधि कार्यान्वयन के लिए एक महत्वपूर्ण तत्त्व है।[14]

एक सच्चे लोकतंत्र के विकास और उसकी निरंतरता राजनीतिक सहभागिता पर सबसे अधिक निर्भर करती है। राजनीति में नागरिकों का विश्वास और राजनीति में उनकी सहभागिता लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। नीति निर्माण में जनता की सहभागिता सक्रिय राजनीतिक सहभागिता का एक रूप है। ऐसा इसलिए है क्योंकि लोग प्रतिक्रिया दे सकते हैं या सरकारों द्वारा बनाई गई नीतियों की आलोचना कर सकते हैं। साथ ही समुदाय की सक्रिय सहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार से प्रोत्साहन की भी आवश्यकता है क्योंकि विकास के क्षेत्र में जनभागीदारी का अभाव सरकार के लिए विकास कार्यक्रमों में तेजी लाना कठिन बना देता है। राजनीतिक सहभागिता किसी भी लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है और नागरिक राजनीतिक सहभागिता की प्रकृति और मात्रा लोकतांत्रिक गुणवत्ता के स्तरों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है। किसी भी लोकतंत्र में राजनीतिक सहभागिता होनी चाहिए, और नागरिक राजनीतिक सहभागिता के प्रकार और डिग्री का इस बात पर बड़ा प्रभाव हो सकता है कि कोई देश कितना लोकतांत्रिक है। जैसे–जैसे आबादी बढ़ी है और अधिक विविध होती गई है, यह चिंता भी बढ़ गयी है कि कैसे एक ''सहभागी समाज'' को स्थापित किया जा सकता है, और सहभागी लोकतंत्र के इस आधार–वाक्य को सच साबित कर सके कि लोग वास्तव में लोकतंत्र में भाग लेना चाहते हैं।

डायमंड के अनुसार, लोकतंत्र में चार प्रमुख तत्व शामिल हैंः स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के माध्यम से सरकार को

चुनने और बदलने के लिए एक राजनीतिक व्यवस्थाय नागरिकों के रूप में, राजनीति और नागरिक जीवन में लोगों की सक्रिय भागीदारीय सभी नागरिकों के मानवाधिकारों की सुरक्षाय और कानून और नियम, जिसमें कानून और प्रक्रियाएं सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होती हैं। शासन के प्रत्येक स्तर पर लोकतंत्र और सामुदायिक राजनीतिक सहभागिता आपस में जुड़ी हुई है। राजनीतिक गतिविधियों में सार्वजनिक सहभागिता को दो रूपोंमें विभाजित किया जा सकता है– सक्रिय और निष्क्रिय सहभागिता। सक्रिय सहभागिता में सामान्य नीति और सार्वजनिक नीति विकल्पों का प्रस्ताव करना शामिल है जो सरकार की नीतियों से भिन्न हैं, नीतियों की आलोचना करना और उन्हें परिष्कृत करना, करों का भुगतान करना और सरकारी नेताओं का चुनाव करना शामिल है। इसके विपरीत, निष्क्रिय सहभागिता श्रेणी में शामिल गतिविधियाँ सरकार का पालन कर रही हैं और सरकार के किसी भी निर्णय को स्वीकार और क्रियान्वित कर रही हैं। समुदाय के लिए राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेना महत्वपूर्ण है, चाहे वह राष्ट्रीय या स्थानीय स्तर पर हो। यह समझने के लिए कि राजनीतिक सहभागिता कैसे प्रभावित होती है, इसका विश्लेषण पाँच सैद्धांतिक दृष्टिकोणों या मॉडलों से किया जा सकता है। जो इस प्रकार है– नागरिक स्वैच्छिकवाद, तर्कसंगत विकल्प, सामाजिक मनोविज्ञान, लामबंदी और सामान्य प्रोत्साहन मॉडल। राजनीतिक सहभागिता के प्रति जन जागरूकता पैदा करना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि लोगों का जीवन बहुत हद तक सरकार द्वारा संचालित राजनीतिक प्रक्रिया पर निर्भर करेगा। यदि लोग राजनीतिक प्रक्रिया की उपेक्षा करते हैं, तो यह बहुत संभव है कि चुना गया व्यक्ति लोगों के लिए एक आदर्श नेता न हो। इसके अलावा, नेता की नीति सार्वजनिक हित का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती है।[15]

राजनीतिक सहभागिता शब्द का प्रयोग अक्सर एक नागरिक द्वारा राजनीतिक मुद्दों के परिणाम को प्रभावित करने के लिए की गई कार्रवाई का वर्णन करने के लिए किया जाता है। प्रतिनिधि लोकतंत्र में, राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा का अर्थ सरकार को प्रभावित करने के लिए स्वतंत्र और समान नागरिकों द्वारा की जाने वाली गतिविधियों से है और ऐसी राजनीतिक सहभागिता लोकतंत्र का दिल है। लोकतंत्र में किसी भी व्यक्ति को राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए मजबूर नहीं किया सकता है, लेकिन यदि नागरिक अपनी लोकतांत्रिक जिम्मेदारियों से पीछे हट जाते हैं, तो लोकतांत्रिक राजनीति जीवित नहीं रह सकती है। राजनीतिक निर्णय लेने में लोगों द्वारा अपनी जरूरतों और हितों को महत्व देने वाली कई गतिविधियों में से, आम चुनावों में वोट डालना हमेशा प्रमुख विशेषता रही है। चूंकि आज यह राजनीतिक कार्रवाई का सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला और सबसे लोकतांत्रिक रूप है।

राजनीतिक सहभागिता लोकतंत्र की एक अनिवार्य विशेषता है और किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के लिए प्रासंगिक है। जहाँ कुछ लोग निर्णयों में भाग लेते हैं, वहाँ बहुत कम लोकतंत्र होता हैय फैसलों में जितनी अधिक सहभागिता होती है, उतना ही अधिक लोकतंत्र होता है। जब राष्ट्र पूरे नागरिक का समान रूप से प्रतिनिधित्व करने में सक्षम होता है तो यह एक लोकतांत्रिक प्रणाली को और अधिक कुशलता से सुदृढ़ कर सकता है। नागरिकों द्वारा राजनीतिक सहभागिता के इतिहास को प्राचीन रोम के लोकतंत्र के में खोजा जा सकता है। राजनीति में सहभागिता या राज्य में जुड़ाव को महत्वपूर्ण माना जाता था। किसी देश में नागरिकों द्वारा राजनीतिक सहभागिता की प्रक्रिया देश की लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था पर सीधे प्रभाव को निर्धारित करती है। राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक प्रणाली में कई तरीकों से भाग ले सकती है, लोगों की सहभागिता भाग लेने वाले नागरिकों के प्रकार और संगठनात्मक क्षमताओं पर निर्भर करती है, जिस तरह से वे अपनी गतिविधियों को निष्पादित करते हैं।

वर्तमान युग में सहभागिता को लोकतंत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीक एवं आधारभूत अवधारणा माना गया है। सहभागिता को लोकतंत्र का आधारभूत आधार माना गया है। सरल शब्दों में सहभागिता का अर्थ शासन की प्रक्रिया में लोगों का योगदान है जिसमें शासन के लिए प्राधिकरणों का गठन शामिल है। शासन में सहभागिता का उद्देश्य मनमाने शासन से जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करना है, इसलिए लोकतंत्र में कानून के शासन को संवैधानिकता का आधारभूत आधार माना जाता है। लोकतंत्र में, शासन में सहभागिता विभिन्न तरीकों से हो सकती है और इन तरीकों को लोकतंत्र में भाग लेने के साधन के रूप में पहचाना जा सकता है। लोकतंत्र कितनी अच्छी तरह से स्थापित है यह इस बात पर निर्भर करता है कि निर्णय से प्रभावित लोगों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में किस हद तक शामिल किया गया है और उन्हें परिणामों को प्रभावित करने का अवसर मिला है । लोकतंत्र सहभागिता के बिना मौजूद नहीं हो सकता, जो लोकतंत्र का एक बुनियादी घटक है। बहुसंख्यक लोकतांत्रिक सिद्धांत और सहभागी लोकतांत्रिक सिद्धांत विशेष रूप से या तो अप्रत्यक्ष

रूप से या स्पष्ट रूप से व्यापक नागरिक सहभागिता की आवश्यकता को मानते हैं। लोकतंत्र की अवधारणा का तात्पर्य है कि शासन का अंतिम अधिकार स्वयं लोगों के पास होना चाहिए। जब नागरिक सक्रिय रूप से राजनीतिक निर्णय लेने में भाग लेते हैं, तो लोकतंत्र के इस विचार को साकार किया जा सकता है। समय के साथ लोकतंत्र का अर्थ और अवधारणा बदल गई है, इसलिए सहभागिता की अवधारणा बदल गई है क्योंकि वे अंतर–संबंधित हैं और लोकतंत्र कुछ न्यूनतम स्तर की राजनीतिक सहभागिता के बिना कार्य नहीं कर सकता है। लोकतंत्र की सफलता को नीतिगत निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता और लोकप्रिय मांगों के लिए प्रणाली के खुलेपन से मापा जाता है। लोकतांत्रिक प्रणालियां राजनीतिक सहभागिता के अवसर खोलती हैं और उन्हें मूल्यवान क्षमता और कौशल विकसित करने में मदद करती हैं। लोकतांत्रिक समाजों में, व्यक्तियों को स्वायत्त होने और उन्हें सावधानीपूर्वक और तर्कसंगत रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जनता की सहभागिता लोकतंत्र का मूल सिद्धांत है। राजनीतिक सहभागिता सरकारी प्रक्रिया में लोगों की सक्रिय भागीदारी को दर्शाती है। लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए किस अनुपात और किस तरह की सहभागिता की आवश्यकता है, इस बात को लेकर मतभेद हैं। हालाँकि, अपने नागरिकों की नियमित और व्यापक राजनीतिक सहभागिता उन सभी आवश्यक मानदंडों में से एक है जो लोकतंत्र को अन्य प्रकार की सरकार से अलग करते हैं।

राजनीतिक सहभागिता की कमी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए हानिकारक होगी क्योंकि लोकतंत्र जनता की भागीदारी पर निर्भर करता है। समुदाय द्वारा सक्रिय मूल्यांकन सरकार में किसी व्यक्ति के राजनीतिक जीवन की स्थिरता को भी निर्धारित करता है। स्थानीय स्तर से केंद्रीय स्तर तक लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लोगों की राजनीतिक सहभागिता का सक्रिय रूप से योगदान लोकतंत्र के सुदृढ़ीकरण के लिए आवश्यक है।[16]

निष्कर्ष - लोकतंत्र लोगों की सहमति से है, यह सहमति विभिन्न समूहों के अलग–अलग हितों और विचारधाराओं के बीच सामंजस्य के माध्यम से प्राप्त की जाती है। इसलिए, लोकतंत्र और राजनीतिक सहभागिता के बीच सहजीवी संबंध है। यह समझा जाना चाहिए कि राजनीतिक सहभागिता का मतलब केवल मतदान में मतदाताओं की उपस्थिति नहीं है। सहभागिता का तात्पर्य मताधिकार के लिए स्थायी बाधाओं को तोड़ना है, चाहे वह कानूनी, राजनीतिक या सामाजिक–आर्थिक हो और हमारी राजनीति में विरासत में मिली बाधाओं को दूर करना हो। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में, राजनीतिक सहभागिता की धारणा ने महत्वपूर्ण प्रासंगिकता हासिल कर ली है। राजनीतिक सहभागिता के विभिन्न तरीकों के बीच अंतर्संबंधों और संबंधों की समझ तक पहुंचने का प्रयास करने के लिए राजनीतिक सहभागिता की एक विस्तृत परिभाषा का उपयोग आवश्यक है। समान रूप से, ऐसी समावेशी परिभाषा नए लोकतंत्रों में राजनीतिक सहभागिता प्रतिरूप का पता लगाने के लिए भी आवश्यक है, जहां लोकतंत्र की गुणवत्ता में सुधार के लिए सक्रिय नागरिक सहभागिता का अस्तित्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। 'लोकतंत्र में सहभागिता' लोकतंत्र के उच्च लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक मूलभूत आधार है। सहभागिता न केवल लोकतंत्र के माध्यम से सरकारी प्राधिकरणों के गठन में अपनी भूमिका निभाती है बल्कि यह राष्ट्र के शासन में भी योगदान देती है। यह शासन करने के लिए संपूर्ण व्यवस्था को वैधता प्रदान करता है। यह शासन के बारे में विचारों की अभिव्यक्ति के लिए एक मंच प्रदान करता है और यह ऐसे विचारों को प्रतिनिधियों के माध्यम से सरकारी अधिकारियों को सूचित करता है। आम तौर पर, वाक्यांश 'राजनीतिक सहभागिता' का उपयोग एक निश्चित प्रकार की मानसिक और शारीरिक गतिविधि को दर्शाने के लिए किया जाता है जो विशिष्ट विषयों द्वारा किया जाता है जो अपने लक्ष्यों का पीछा करते हैं, जो विशेष संस्थाओं के लिए निर्देशित होते हैं और जिनकी कुछ विशेषताएं होती हैं जो इसे अन्य प्रकारों से अलगबनाती हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. Falade, D. A. (2014). Political Participation in Nigerian Democracy: A Study of Some Selected Local Government Areas in Ondo State, Nigeria. Global Journal of Human-Social Science: (F) Political Science, Page- 18.
2. Falade, D. A. (2014). Political Participation in Nigerian Democracy: A Study of Some Selected Local Government Areas in Ondo State, Nigeria. Global Journal of Human-Social Science: (F) Political Science, Page- 18.
3. Chinonyelum, Agu. (2015). Democracy, Election and Political Participation in Nigeria: 1999-2011.

Journal of Policy and Development Studies, Page- 117.
4. Gopal, K. & Verma, R. (2017). Political Participation: Scale Development and Validation. International Journal of Applied Business and Economic Research, Page- 393.
5. Djuyandi, Yusa. & Jumroh. (2021). Democracy and local political participation in Sumedang, Indonesia. Journal of Public Affair, Page- 3.
6. Falade, D. A. (2014). Political Participation in Nigerian Democracy: A Study of Some Selected Local Government Areas in Ondo State, Nigeria. Global Journal of Human-Social Science: (F) Political Science, Page- 18.
7. Chinonyelum, Agu. (2015). Democracy, Election and Political Participation in Nigeria: 1999-2011. Journal of Policy and Development Studies, Page- 117.
8. Gopal, K. & Verma, R. (2017). Political Participation: Scale Development and Validation. International Journal of Applied Business and Economic Research, Page- 391.
9. Demetriou, Kyriakos N. (2013). Democracy in Transition Political Participation in the European Union. Springer, Page- 9.
10. Demetriou, Kyriakos N. (2013). Democracy in Transition Political Participation in the European Union. Springer, Page- 43.
11. Ekman, Joakim & Amna, Erik. (2011). Political Participation and Civic engagement: Towards a new Topology. Springer , Page- 290.
12. Teorell, Jan. (2011). Political participation and three theories of democracy: A research inventory and agenda. European Journal of Political Research, Page- 787.
13. Somerville, Peter. (2011). Democracy and participation. Policy & Politics, Page- 418.
14. Djuyandi, Yusa. & Jumroh. (2021). Democracy and local political participation in Sumedang, Indonesia. Journal of Public Affair, Page- 2.
15. Djuyandi, Yusa. & Jumroh. (2021). Democracy and local political participation in Sumedang, Indonesia. Journal of Public Affair, Page- 2.
16. Djuyandi, Yusa. & Jumroh. (2021). Democracy and local political participation in Sumedang, Indonesia. Journal of Public Affair, Page- 1.

ISSN : 0976 - 3287

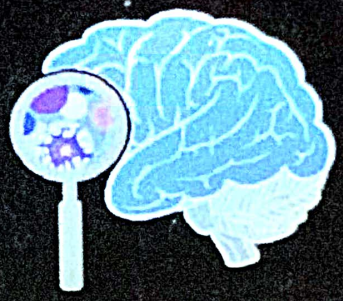

Vol. 32 (July 2022 - December 2022)

JOURNAL OF ACHARYA NARENDRA DEV RESEARCH INSTITUTE

(Peer-Reviwed)

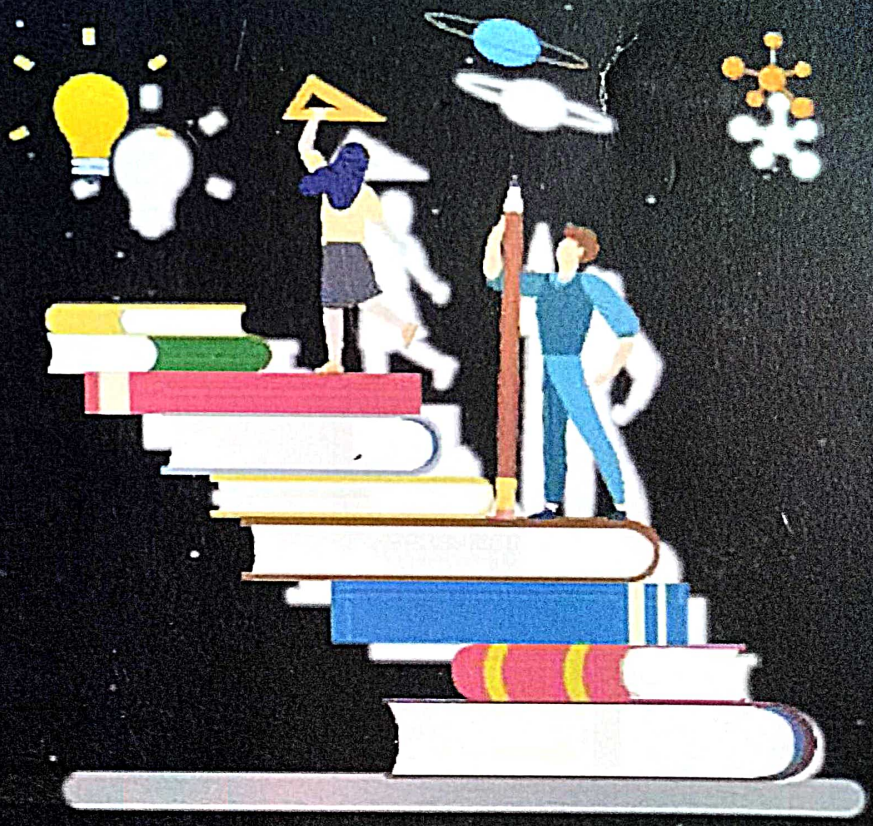

भारत में चुनाव सुधार

पंकज सिंह *, प्रतिमा वर्मा **

सारांश

भारत में लोकतंत्र एवं प्रतिनिधि संस्थाएं पूर्णतया नयी नहीं हैं। विचार विमर्श करने वाले कुछ प्रतिनिधि निकाय तथा लोकतंत्रात्मक स्वशासी संस्थाएं वैदिक काल में भी थीं। ऋग्वेद में सभा तथा समिति नामक दो संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। यहीं से वर्तमान संसद की शुरुआत मानी जा सकती हैं। वैदिक ग्रंथों में ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि यह दो वैदिक निकाय राज्य के कार्यों से निकट का संबंध रखते थे। ऐसा ज्ञात होता है आधुनिक संसदीय लोकतंत्र के कुछ महत्वपूर्ण तत्व जैसे निर्बाध चर्चा और बहुमत द्वारा निर्णय तब भी विद्यमान थे। बहुमत से हुआ निर्णय सर्वमान्य माना जाता था जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती थी।

आधुनिक अर्थों में संसदीय शासन प्रणाली एवं विधायी संस्थाओं का विकास लगभग दो शताब्दियों तक ब्रिटेन के साथ भारत के संबंधों से जुड़ा हुआ है। ब्रिटिश शासकों द्वारा छोटे–छोटे टुकड़ों में किए गए संवैधानिक सुधारों को आधुनिक चुनाव प्रक्रिया का आधार स्तंभ माना जाता है। आजादी के बाद भारत ने संसदीय शासन प्रणाली अपनाई जो आज भी हमारे यहां चल रही है। लेकिन इतिहास बताता है कि भारत में चुनावी प्रणाली प्राचीन काल से अस्तित्व में थी। अंग्रेजों के समय सन 1773 में उस समय एक बार फिर भारत में संसदीय प्रणाली स्थापित हुई जब सत्ता गवर्नर जनरल की समिति को सौंपी गई। इसके बाद 1861 में कैनिंग ने पोर्टफोलियो पद्धति लागू की और समिति के सदस्यों को विभिन्न मंत्रालयों का कार्यभार सौंप दिया। इसके बाद 1919 के एक्ट के आधार पर भारत के प्रांतों में दोहरी सरकार की व्यवस्था लागू की गई। 1858 के भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश संसद ने भारत के शासन की बागडोर कंपनी के हाथों से स्वयं के हाथों में ले ली और भारत की सत्ता ब्रिटिश महारानी ताज में निहित हो गई और भारत में शासन की जिम्मेदारी भारत सचिव को सौंप दी।[1]

संकेत शब्द : चुनाव आयोग, निष्पक्ष व स्वतंत्र चुनाव, पारदर्शिता, समितियां, लोकतंत्र, नोटा, उम्मीदवार, चुनाव आयुक्त।

प्रस्तावना

1885 में कांग्रेस का जन्म हो चुका था और कांग्रेस ने अपने अधिवेशन में यह मांग प्रस्तुत कर दी कि केंद्रीय और प्रांतीय परिषदों का विस्तार किया जाए। इसके बाद 1842 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की विधानपरिषद का विस्तार किया गया। फिर इसके बाद 1909 और 1919 के भारत सरकार अधिनियम अस्तित्व में आए, जिसने भारत के संवैधानिक विकास को प्रभावित किया। 1919 के अधिनियम में बहुत सी कमियां थीं और यह भारतीयों के साथ भेदभाव करता था इसलिए कांग्रेस की मांग पर 1935 में एक और भारतीय शासन अधिनियम अस्तित्व में आया। 1935 के अधिनियम के द्वारा मताधिकार को पहले से अधिक विस्तृत कर दिया गया और चुनाव पद्धति का पहले से अधिक विस्तार कर दिया गया।

1946 में कैबिनेट मिशन योजना अस्तित्व में आई जिसमें भारत की शासन व्यवस्था व चुनाव प्रणाली पर चर्चा की गई। जुलाई 1946 में इस योजना के तहत चुनाव हुए, कांग्रेस ने बहुमत प्राप्त किया, इसके बाद संविधान सभा का गठन हुआ, फिर भारत आजाद हुआ और संविधान लागू हुआ और भारत की वर्तमान निर्वाचन प्रणाली अस्तित्व में आई। वर्तमान निर्वाचन प्रणाली के तहत अनुच्छेद 324 से 329 में चुनाव आयोग का वर्णन है। अनुच्छेद 324 के तहत देश के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद और विधानमंडल के चुनाव संपन्न कराने की जिम्मेदारी चुनाव आयोग की है व पंचायत, नगर निगम के चुनाव कराने की जिम्मेदारी राज्य निर्वाचन आयोग की है।[2]

1950 से अक्टूबर 1980 तक चुनाव आयोग एक सदस्य निकाय के रूप में कार्य करता था जिसमें केवल मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता था। 61वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1989 के द्वारा मत देने की आयु 21 वर्ष से 18 वर्ष करने के बाद 16 अक्टूबर 1989 को राष्ट्रपति ने चुनाव आयोग के काम के भार को कम करने के लिए दो अन्य निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त किया और चुनाव आयोग बहुसदस्यीय बन गया। लेकिन 1990 में ही दोनों निर्वाचन आयुक्तों के पदों को समाप्त कर दिया गया और पहले जैसी स्थिति हो गई। लेकिन अक्टूबर 1993 में फिर दो निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त कर दिया गया। तब से यही स्थिति है। अब वर्तमान में एक मुख्य एवं दो निर्वाचन आयुक्त हैं। अब तक 17 आम चुनाव हो चुके हैं व कई बार विधानसभा चुनाव हो चुके हैं फिर भी चुनावी सुधार की जरूरत की बातें होती रहती हैं और सरकार ने समय–समय पर कई

* अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.एस.बी. कैम्पस, नैनीताल
** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, एम0 बी0 पी0 जी0 कॉलेज, हल्द्वानी

कमेटियों का भी गठन किया है जैसे कि के संथानम समिति 1964, तारकुंडे समिति 1975, दिनेश गोस्वामी समिति 1990, इंद्रजीत गुप्त कमेटी 1998, वोहरा समिति 1991 व संविधान समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग 2001 आदि। इन समितियों ने स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव कराने व धनबल व बाहुबल से निपटने व राजनेताओं के गुंडा गिरोह से सांठगांठ से निपटने के लिए कई सुझाव भी दिए हैं।[3]

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि चुनाव सुधार से संबंधित समितियों का लोकतंत्र पर प्रभाव पड़ा है या नहीं। प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्धेश्य हैं–

- चुनाव सुधारों के द्वारा चुनाव प्रणाली पर पड़े प्रभावों का अध्ययन करना।
- चुनाव सुधारों के कारण आम मतदाता के दृष्टिकोण पर पड़े प्रभावों का अध्ययन करना।
- धर्म एवं जाति का मतदान पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
- स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव से संबंधित सुझावों का पता लगाना।

शोध प्रविधि

इस शोध पत्र के लिए शोधकर्ता ने शोध सामग्री मुख्यतः द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त की है एवं संबंधित पुस्तकों का गहन अध्ययन कर शोध की विश्लेषण व वर्णनात्मक पद्धति को अपनाया है व शोधकर्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभव व समाचार पत्रों, इंटरनेट एवं पत्र–पत्रिकाओं से प्राप्त जानकारी को भी इसमें स्थान दिया है।

चुनाव सुधार से संबंधित प्रमुख समितियां

1964 में के संथानम समिति की अध्यक्षता वाली भ्रष्टाचार निरोधक समिति 'कमेटी ऑन प्रिवेंशन ऑफ करप्शन' ने राजनीति के क्षेत्र में चुनाव सुधार से संबंधित कई सिफारिशें कीं। जिसमें उन्होंने चुनाव के उम्मीदवार के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यताएं निर्धारित करने व उम्मीदवार के धन खर्च को रोकने के लिए चुनाव पर्यवेक्षक नियुक्त किए जाने की सिफारिश की और इसके अलावा निर्वाचन नामावली या मतदाता सूची में समय–समय पर सुधार की भी वकालत की व चुनाव प्रक्रिया के दौरान दोषी निर्वाचन अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की भी सिफारिश की और इस समिति ने समय–समय पर निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन करने को भी प्रमुख सिफारिश के रूप में जरूरी बताया।[4]

तारकुंडे समिति का गठन 1974 में सिटीजन ऑफ डेमोक्रेसी नामक संस्था ने चुनाव सुधार के लिए किया था व इस समिति ने चुनाव सुधार से संबंधित कई प्रमुख सिफारिशें प्रस्तुत कीं जिसमें सभी राजनीतिक दलों के लिए आय के स्रोतों व आय एवं व्यय का पूरा हिसाब किताब लिखना अनिवार्य करने और मताधिकार की आयु 21 के स्थान पर 18 वर्ष करने की भी सिफारिश की एवं लोकसभा तथा विधानसभा के विघटन और नए चुनाव की घोषणा के बाद से सरकार कामचलाऊ सरकार की तरह काम करे। वह न तो नई नीतियों की घोषणा करे और न ही उन्हें लागू करे। यह भी इसका एक प्रमुख सुझाव था और चुनाव आयोग की सहायता के लिए केंद्र व राज्य में निर्वाचन परिषद का गठन किया जाए व इन निर्वाचन परिषदों में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों को शामिल करने की बात कही एवं निर्वाचन परिषदों के अलावा मतदाता परिषद बनाए जाने का भी सुझाव दिया और निर्वाचन आयोग बहुसदस्यीय हो व निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति प्रधानमंत्री एवं विपक्ष के नेता व मुख्य न्यायाधीश से बनी समिति के द्वारा की जाए यह भी इसका एक प्रमुख सुझाव था।[5]

दिनेश गोस्वामी समिति का गठन 1990 में किया गया व इसकी सिफारिशों को जनप्रतिनिधित्व संशोधन अधिनियम 1996 में स्वीकार कर लिया गया। इस समिति ने चुनाव सुधार से संबंधित कई अहम सुझाव दिए जिसमें एक उम्मीदवार को दो से अधिक स्थानों से चुनाव नहीं लड़ने का एक अहम सुझाव दिया व मतदान तिथि के 40 घंटे पूर्व से शराब बिक्री पर रोक लगाने की बात कही एवं बूथ कैपचरिंग की स्थिति में पुनः मतदान की व्यवस्था की भी सिफारिश की एवं इसके अलावा मतदानपत्र पर मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों का नाम स्वतंत्र उम्मीदवारों से ऊपर हो यह भी इस समिति का प्रमुख सुझाव था व उम्मीदवार की मृत्यु की स्थिति में चुनाव रद्द नहीं बल्कि राजनीतिक दल द्वारा दूसरा उम्मीदवार घोषित करने की भी वकालत की एवं भारत के संविधान के अनुसार दोषी व्यक्ति को सजा होने की तिथि से 4 वर्षों तक चुनाव लड़ने पर रोक लगाने की भी सिफारिश की एवं मतदान केंद्र पर हथियार लेकर जाने को कानूनी अपराध घोषित करने व इसके लिए दंड एवं जुर्माना दोनों के प्रावधान बनाने की बात कही एवं यदि सदन का कार्यकाल 1 वर्ष से ज्यादा हो तो संसद या राज्य विधानसभा के उपचुनाव 6 महीने के भीतर करा लिए जाने की बात कही एवं इस समिति ने ईवीएम के प्रयोग करने की सिफारिश की थी।

इंद्रजीत गुप्त कमेटी का गठन वरिष्ठ कम्युनिस्ट नेता इंद्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में 1998 में किया गया। इस समिति ने चुनाव सुधार से संबंधित कई प्रमुख सिफारिशें कीं जिसमें चुनाव खर्च सरकार द्वारा वहन करने व इसके लिए एक

चुनाव कोष के निर्माण की बात कही एवं राष्ट्रीय दलों को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र व राज्य स्तरीय दलों को राज्य स्तरीय एक कार्यालय और टेलीफोन सुविधा निःशुल्क दिए जाने की बात कही एवं आकाशवाणी व दूरदर्शन पर राष्ट्रीय समान ही क्षेत्रीय दलों को भी प्रचार प्रसार का समय दिए जाने की सिफारिश की।

वोहरा समिति का गठन 1993 में अपराध एवं राजनीति के बीच सांठगांठ की जांच करने के लिए किया गया था इस समिति का गठन मुंबई के 1993 के सिलसिलेवार बम विस्फोट कांड के बाद पूर्व गृह सचिव एन.एन. वोहरा की अध्यक्ष में हुआ था, जिसने मात्र 3 महीने के भीतर ही अक्टूबर में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी। लेकिन इस रिपोर्ट को आज तक पूरी तरह सार्वजनिक नहीं किया गया है। 1995 में इसके कुछ अंशों को जरूर सार्वजनिक किया गया जो संगठित अपराधियों, नेताओं और पुलिस तथा नौकरशाहों की सांठगांठ की ओर संकेत दे रहे थे।[6]

कुछ अन्य चुनाव सुधार

वोट देने की आयु कम करना

61 वें संविधान संशोधन 1988 के द्वारा लोकसभा व विधानसभा में वोट देने की आयु को 21 वर्ष से कम कर 18 वर्ष कर दिया गया ताकि देश के युवाओं को उचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके।

प्रस्तावकों की संख्या में में वृद्धि

1988 में राज्यसभा एवं राज्य विधान परिषदों के चुनाव के लिए नामांकन पत्रों पर प्रस्तावक के रूप में हस्ताक्षर करने वाले निर्वाचकों की संख्या 10 कर दी गई।

राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का चुनाव

1977 में राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए प्रस्तावक और समर्थक निर्वाचकों की संख्या 10 से बढ़ाकर 50 कर दी गई

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन

1989 के चुनाव में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के इस्तेमाल की व्यवस्था की गई। सर्वप्रथम इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का इस्तेमाल 1998 के विधानसभा चुनाव में राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली में किया गया व 1999 में गोवा विधानसभा चुनाव में पूरे राज्य में ईवीएम का प्रयोग हुआ।

मतदाता फोटो पहचान पत्र

फर्जी मतदान रोकने के लिए चुनाव आयोग ने 1993 में सभी पंजीकृत मतदाताओं को फोटो पहचान पत्र जारी करने का निर्णय लिया।

चुनाव सुधार में नोटा मतदान चिन्ह

चुनाव आयोग ने सुप्रीम कोर्ट के फैसले के द्वारा 27 सितंबर 2013 में नोटा चिन्ह को बैलेट में जगह दिलवाई थी। नोटा चिन्ह को 11 अक्टूबर 2013 को बैलेट पेपर पर डाल दिया गया था व इसके बाद बिहार विधानसभा चुनाव 2015 में इसे विकल्प के रूप में शामिल किया गया था। नोटा चिन्ह का प्रयोग करने वाला छत्तीसगढ़ पहला राज्य बना। नोटा का मतलब यह हुआ अगर मतदाताओं को कोई भी उम्मीदवार उपयुक्त नहीं लग रहा है तो वह नोटा चिन्ह पर भी मतदान कर सकता है। नोटा का चिन्ह बैलेट फॉर्म में सबसे नीचे अंकित किया जाता है। इससे मतदाता को अपनी नापसंद बताने का मौका मिल जाता है नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन द्वारा नोटा का चिन्ह बनाया गया है।

मतदाता निरीक्षण पेपर ऑडिट ट्रायल

वोटर वेरीफिकेशन पेपर ऑडिट ट्रेल यानि वीवीपैट ईवीएम से ही जुड़ी हुई प्रणाली है। वीवीपैट यह सत्यापित करता है कि मत उम्मीदवार को ही पड़ा है कि नहीं जिसके पक्ष में मतदाता ने मत डाला था। जब मत पड़ता है तो एक स्लिप मुद्रित होती है और 7 सेकंड के लिए एक पारदर्शी बॉक्स में उम्मीदवार का नाम व चिन्ह प्रदर्शित होता है। वर्ष 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने वीवीपैट को चरणबद्ध तरीके से शुरू करने की अनुमति दी थी और इसे स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की अपरिहार्य जरूरत बताया था।[7]

चुनाव में धर्म जाति भाषा संप्रदाय विशेष के आधार पर वोट मांगने पर सर्वोच्च न्यायालय की रोक

सर्वोच्च न्यायालय ने 2 जनवरी 2017 को चुनावों में जाति, भाषा और संप्रदाय विशेष के नाम पर वोट मांगने पर पूरी तरह से रोक लगा दी है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि भगवान और मनुष्य का संबंध व्यक्तिगत है इसलिए धर्म का प्रयोग चुनाव में नहीं किया जा सकता है। जाति, समुदाय, धर्म, नस्ल या भाषा के आधार पर मतदान की अपील करना भ्रष्ट आचरण है।

चुनाव सुधार से संबंधित निम्नलिखित सुझावों पर भी विचार करना आवश्यक है। निष्पक्ष चुनाव के संबंध में एक

सुझाव यह भी आया है कि जिस दिन मतदान होता है उसी दिन मतदान समाप्त होने के बाद ही मतदान केंद्रों पर ही मतों की गणना का काम उम्मीदवारों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में संपन्न हो जाए ताकि मत पेटियों को दूर–दूर ले जाने में गड़बड़ी की शंका ही ना हो एवं उम्मीदवारों के दो स्थानों से चुनाव लड़ने पर रोक लगाई जाए व उम्मीदवार की अधिकतम आयु सीमा तय की जाए एवं चुनाव सुधार से संबंधित एक महत्वपूर्ण सुझाव यह भी है कि उम्मीदवार या प्रतिनिधि बनने की अहर्ता में परिवर्तन किया जाए। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति किसी भी अपराध में जेल में हो तो उसके चुनाव लड़ने पर रोक लगाई जाए एवं इन सबके अतिरिक्त महिलाओं को विधानसभा व लोकसभा में उचित प्रतिनिधित्व के लिए उनके लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की जाए एवं चुनाव संपन्न कराने में ऋतु, दिन एवं समय निर्धारण में सावधानी बरती जाए। चुनाव के दौरान मतदाताओं को भयमुक्त वातावरण प्रदान किया जाए एवं पैसा और शराब के विरुद्ध जबरदस्त नियंत्रण किया जाए।[8]

विभिन्न समितियों के सुझावों का लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था पर पड़े प्रभावों का वर्णन

1964 में बनी संथानम समिति की सिफारिश के आधार पर ही केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की गई एवं संसद द्वारा अधिनियमित केन्द्रीय सर्तकता आयोग अधिनियम 2003 द्वारा इसे सांविधिक दर्जा दिया गया है। केन्द्रीय सर्तकता आयोग केन्द्रीय सरकारी संगठनों में विभिन्न प्राधिकारियों को उनके कार्यों की योजना बनाने, समीक्षा करने एवं कार्यों में सुधार के सम्बन्ध में सहायता करता है एवं भ्रष्टाचार से संबंधित शिकायतों पर कार्यवाही करता है। यह या तो सी0बी0आई0 या सरकारी सर्तकता अधिकारियों के द्वारा भ्रष्टाचार के मामलों की जांच करता है। सी0 वी0 सी0 किसी मन्त्रालय के अन्तर्गत कार्य नहीं करता है, यह केवल संसद के प्रति उत्तरदायी है। यह अपनी वार्षिक रिपोर्ट में किये गये कार्यों का विवरण देता है। सी0 वी0 सी0 के कारण ही आज हम अपनी लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में भ्रष्टाचार के मामलों में नियंत्रित कर पा रहे हैं।

सिटीजन आफ डेमोक्रेसी नामक संस्था द्वारा गठित तारकुन्डे समिति की सिफारिश के आधार पर राजीव गांधी सरकार द्वारा 61 वें संविधान संशोधन के द्वारा मतदान की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष कर दी एवं केन्द्रीय निर्वाचन आयोग को एक सदस्यीय से बढ़ाकर तीन सदस्यीय आयोग बना दिया गया और तारकुन्डे समिति की सिफारिश ने ही उम्मीदवारों के लिये निश्चित नामांकन राशि व उम्मीदवार द्वारा चुनावी व्यय का लेखा जोखा आयोग के सामने प्रस्तुत करना अनिवार्य कर दिया। इन सिफारिशों ने ही भारतीय लोकतंत्र में युवाओं की भागीदारी को बढ़ाने एवं उम्मीदवारों की जिम्मेदारी को भी अधिक सशक्त करने का कार्य किया।

1990 में गठित दिनेश गोस्वामी समिति की अधिकतर सिफारिशों को जनप्रतिनिधित्व संशोधन अधिनियम 1996 में स्वीकार कर लिया गया। इसमें प्रमुख रूप से केन्द्र या राज्य स्तर के सदन का कोई स्थान खाली होने की स्थिति में 6 माह के भीतर निर्वाचन की व्यवस्था करने संबंधी सिफारिश है। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर ही हमारी चुनावी व्यवस्था में व्याप्त बूथ कैप्चरिंग तथा बोगस वोटिंग संबंधित समस्याओं का समाधान हुआ है।

1990 के दशक तक हमारे देश में उम्मीदवारों के चुनावी व्यय के संबंध में कोई स्पष्ट नीति नहीं थी। इस समस्या का समाधान करने में इंद्रजीत गुप्त समिति के सुझावों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर ही आज प्रत्याशी अपने वार्षिक आयकर रिटर्न दाखिल करते हैं और चुनावी व्यय का लेखा जोखा चुनाव आयोग को देते हैं।

इंद्रजीत गुप्त कमेटी के बाद अपराध व राजनीति की सांठ–गांठ की जांच करने के लिये वोहरा समिति का गठन किया गया था जिसने राजनीतिक व्यक्तियों के कई आपराधिक गठजोड़ के मामलों को रेखांकित किया और अपनी रिपोर्ट में माफियाओं और अपराध सिंडिकेट के बारे में काफी व्यापक और स्पष्ट चर्चा की। सरकार ने इस समिति की, प्रत्याशियों के खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों का प्रेस तथा मीड़िया में व्यापक प्रचार संबंधी, सिफारिश को स्वीकार कर लिया। इन सभी समितियों की सिफारिशों के कारण भारतीय चुनाव प्रणाली की प्रक्रिया अधिक प्रभावी एवं विश्वसनीय हुई।[9]

निष्कर्ष

चुनाव सुधार के लिए गठित समितियों ने कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। फिर भी चुनाव आयोग की पारदर्शिता व निष्पक्षता के लिए चुनाव आयोग को कुछ और शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। क्योंकि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। इतने बड़े लोकतांत्रिक देश के लिए निर्वाचन आयोग की भूमिका निष्पक्ष व पारदर्शी ही होनी चाहिए ताकि निर्वाचन आयोग इन शक्तियों का प्रयोग स्वतंत्र रूप में कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार, सुमित, भारत में चुनाव सुधार, इन्टरनेशनल जर्नल आफ रिसर्च (ISSN: 2348-6848), (2018), पृष्ठ–01
2. वर्णवाल, महेश कुमार, भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था, कासमॉस पब्लिकेशन, दिल्ली, 2017, पृष्ठ–124
3. कश्यप, सुभाष, दलबदल व राज्य की राजनीति, श्रीवाली प्रकाशन, मेरठ, 1970, पृष्ठ–156

4. जोशी, आर पी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था: पुर्नसंरचना के विविध आयाम, रावत पब्लिकेशनस,जयपुर, 2000, पृष्ठ–136
5. कुमार, सुमित, भारत में चुनाव सुधार, इन्टरनेशनल जर्नल आफ रिसर्च (ISSN: 2348-6848)] (2018), पृष्ठ–3
6. चौधरी, बासुकी नाथ, भारतीय शासन और राजनीति ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेज लिमिटेड प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ–74
7. नरूला, वी सी, भारतीय राजनीति, अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृष्ठ–54
8. कुमार, सुमित, भारत में चुनाव सुधार, इन्टरनेशनल जर्नल आफ रिसर्च (ISSN: 2348-6848)] (2018), पृष्ठ–7
9. विशेष : चुनाव सुधार–दृष्टि the Vission
10. संसद टीवी संवाद
11. चुनाव सुधार विकीपीडिया
12. पत्र पत्रिकाएं
13. www.google.comv

ISSN 2230-7370
(Peer - Reviewed)

MAN, NATURE & SOCIETY

Annual Journal of the Department of Political Science

VOL. IX 2023

Prof. Neeta Bora Sharma
Editor-in-Chief
Department of Political Science
D.S.B. Campus, Kumaun University
Nainital

समाजवादी विचारों की समकालीन प्रासंगिकता : एक अध्ययन

प्रतिमा वर्मा*, पंकज सिंह**

सारांश

समाजवाद सिद्धान्त एवं आंदोलन, दोनो ही है और यह विभिन्न ऐतिहासिक एवं स्थानीय परिस्थितियों में विभिन्न स्वरुप धारण करता है। समकालीन वैश्विक परिदृश्य में समाजवादी विचारों के पर निर्मित प्रणाली के द्वारा ही मनुष्य एवं समाज का अधिकतम कल्याण किया जा सकता है। समाजवादी विचारों के आधार पर निर्मित प्रणाली को राजनैतिक सिद्धान्तों में 'समाजवाद' की संज्ञा दी जाती है। भारत में समाजवादी विचारों के आधार पर समाजवाद की एक नवीन दर्शन के उदय में आचार्य नरेन्द्र देव, लोहिया एवं जे0 पी0 नारायण का योगदान प्रमुख है। समाजवादी व्यवस्था में धन एवं सम्पत्ति का स्वामित्व और वितरण समाज के नियन्त्रण में रहता है। इस सम्बन्ध में निजी क्षेत्र की भूमिका गौण रहती है। पूँजीवादी व्यक्तिगत सिद्धान्तों पर आधारित सिद्धान्त है। यह उत्पादन और वितरण के साधनों पर निजी स्वामित्व की बात करता है। पूँजीवादी और समाजवादी प्रणालियों का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि दोनों में से कोई भी अपने आप पूर्ण नहीं है। यदि तुलनात्मक रूप में विश्लेषण किया जाए तो समाजवादी आर्थिक प्रणाली पूँजीवादी की तुलना में अधिक सफल है। समाजवादी व्यवस्था के अधिक सफल होने का कारण अधिकतम सामाजिक कल्याण की भावना का होना है तथा पूँजीवाद के शोषण से समाज को मुक्ति दिलाना हैं निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता हैं जहां पूँजीवाद असफल होता है वहां समाजवाद सफल होता हैं। इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था के दोषों को दूर करने का एक साधन है। प्रस्तुत आलेख में भारत में समाजवादी विचारों और समाजवादी आंदोलनों के इतिहास का विधिवत् विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द– सोशलिज़्म, लोकतान्त्रिक समाजवाद, आचार्य नरेन्द्र देव, श्रमिक संघवाद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन।

प्रस्तावना

समाजवाद, समाजवादी विचारों के आधार पर निर्मित प्रणाली है जिसका उदय यूरोप में 19वीं शताब्दी में हुआ है। समाजवादी विचारों के आधार पर निर्मित प्रणाली को राजनैतिक सिद्धान्तों में 'समाजवाद' की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान युग की एक लोकप्रिय विचारधारा है जिस प्रकार हम सरकार का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप प्रजातंत्र को मानते हैं उसी प्रकार अधिकांश विचारक समाजवाद को आज के युग में महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था मानते हैं। इस विचारधारा की प्रभावशीलता के कारण आज अधिकांश देश अपने आपको समाजवादी देश कहलाने में गौरवान्वित महसूस करते हैं। राजनीतिक विचारक समाजवाद अपने दृष्टिकोण के द्वारा देखते हैं। समाजवाद के संदर्भ में सी0 ई0 एम0 जोड ने कहा है – ''समाजवाद एक ऐसे टोप की तरह है, जिसकी आकृति इस कारण विकृत हो गयी है कि इसे प्रत्येक व्यक्ति ने अपने सिर पर धारण करने का प्रयास किया है।'' जोड सही है, गाँधीवाद की टोपी दृश्य है, किन्तु समाजवाद का टोप अदृश्य है और इसे कभी प्लेटो ने अपने आदर्शवाद के रंग में पहना, कभी मार्क्स ने अपने साम्यवाद में ढाला, तो कभी बर्नाड ने लोकतान्त्रिक फेबियनवाद में। समाजवादी विचारों से समाजवाद का उदय होता है। समाजवादी व्यवस्था में धन एवं सम्पत्ति का स्वामित्व और वितरण समाज के अधीन रहता है।

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, एम.बी.पी.जी.कॉलेज, हल्द्वानी
** शोध छात्र/अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, एम.बी.पी.जी.कॉलेज, हल्द्वानी

समाजवाद का लक्ष्य 'एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें किसी व्यक्ति या
कोई विशिष्ट अधिकार और शक्ति नहीं हो, अपितु सभी समानता और बंधुत्व के
वस्तुतः समाजवाद मुख्यतः चार कारकों का उन्मूलन चाहता है– निजी संपति,
परिवार। इनमें भी वह सम्पति के उन्मूलन को आधारभूत मानता है ,क्योंकि वह
नियतत्ववाद में विश्वास करता है, जिसके अनुसार आर्थिक शक्तियाँ ही हमारे इतिहास
निर्धारक है। कई बार समाजवाद के संदर्भ में समष्टिवाद शब्द का प्रयोग किया जाता
किसी भी उस धारा के लिए प्रयुक्त होता है, जिसमें व्यष्टि के बजाए समष्टि पर बल
नीलम चौरे (2017) 'समाजवादी विचारधारा न केवल समाज की आर्थिक क्षेत्र में बल्कि
राजनीतिक क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करती हैं।' समकालीन
में समाजवादी विचारों पर निर्मित प्रणाली के द्वारा ही मनुष्य एवं समाज का अधिकतम
जा सकता है। समाजवादी विचारों के आधार पर निर्मित प्रणाली को राजनैतिक
'समाजवाद' की संज्ञा दी जाती है। समाजवादी व्यवस्था में धन सम्पत्ति का स्वामित्व
समाज के नियन्त्रण में रहता है। इस सम्बन्ध में निजी क्षेत्र की भूमिका गौण रहती है।
व्यक्तिगत सिद्धान्तों पर आधारित सिद्धान्त है। यह उत्पादन और वितरण के साधनों
स्वामित्व की बात करता है। पूँजीवादी और समाजवादी प्रणालियों का विश्लेषण किया जाए
होता है कि दोनों में से कोई भी अपने आप पूर्ण नहीं है। यदि तुलनात्मक रूप में विश्लेषण
तो समाजवादी आर्थिक प्रणाली पूँजीवादी की तुलना में अधिक सफल है। समाजवादी
अधिक सफल होने का कारण अधिकतम सामाजिक कल्याण की भावना का होना है तथा पूँ
शोषण से समाज को मुक्ति दिलाना हैं निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता हैं जहां पूँजीवाद
है वहां समाजवाद सफल होता हैं। इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था के
दूर करने का एक साधन है।

समाजवाद शब्द अंग्रेजी के Socialism शब्द का अनुवाद है, जो स्वयं ग्रीक शब्द
से बना है, जिसका अर्थ है – समाज (Society)। सर्वप्रथम 'सोशलिज्म' शब्द का प्रयोग इटली
1803 में किया गया था। सन् 1827 में 'लंदन कोआपरेटिव मैगज़ीन' में रार्बट ओवन के अनु
को इस शब्द से संबोधित किया गया था। 1833 में फ्रासंसी पत्रिका 'लेम्लोब' में सेण्ट साइ
सिद्धान्तों को व्यक्त करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया था। कालांतर में धीरे–धीरे
1840 तक समाजवाद शब्द का उपयोग सम्पूर्ण यूरोप में होने लगा। समाजवाद का प्रयोग एक
के रूप में काफी बाद में हुआ किंतु समाजवाद मूलतः एक विचारधारा के रूप में आधुनिक यु
विचारधारा है। एक विस्तृत अर्थ के रूप में मनुष्य की समानता या न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्
अर्थ में इस प्रकार की विचारधारा के दर्शन अत्यंत प्राचीन काल से होते हैं। प्लेटो की पु
'रिपब्लिक' में आदर्श राज्य का जो चित्रण है, उसमें समाजवाद के बीज निहित है। प्लेटो
विचारानुसार व्यक्तिगत संपत्ति और परिवार मनुष्य को पथभ्रष्ट करते हैं। प्लेटों के पश्चात रोमन
तथा मध्य युग में होरेस, वर्जिल, बाईक्लिफ जैसे विचारकों ने अपने विचारों का प्रतिपादन कि
आधुनिक युग में यूटोपिया सर थॉमस मूर द्वारा रचित प्रमुख रचना है, जिसमें इंग्लैंड की अन्याय
व्यवस्था का वर्णन किया गया है नूर के बाद फ्रांसिस बेकन के न्यू अटलांटिस में तत्का
सामाजिक व्यवस्था की आलोचना कर राज्य का चित्रण किया।

समाजवाद के मूल सिद्धांत

➢ व्यक्ति के बजाय समाज को अधिक महत्व– समाजवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधि
महत्व देता है समाज के द्वारा ही व्यक्ति का संपूर्ण विकास हो सकता है इसलिए सं

समाज का विकास किया जाना चाहिए। सामाजिक हित को सर्वोच्च स्थान देना इसका प्रमुख विचार है।

- उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर राज्य का नियंत्रण– देश की संपत्ति पर किसी व्यक्ति विशेष का नियंत्रण नहीं होना चाहिए अपितु संपूर्ण समाज का होना चाहिए। सभी व्यक्तियों की आवश्यक आवश्यकता पूरी करनी है तो उत्पादन और वितरण में राज्य का नियंत्रण रहना चाहिए। इससे व्यक्ति द्वारा व्यक्तियों के शोषण को दूर किया जा सकता है। समाजवाद व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था का विरोध करता है।
- प्रतियोगिता का अंत– समाजवाद प्रतियोगिता का विरोध करता है तथा सहयोग को उचित मानता हैं। प्रतियोगिता के फलस्वरुप समाज दो वर्गो उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग में विभक्त हो जाता है। उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता है। अतः समाजवाद सहयोग का समर्थक है। वर्ग भेद तथा यह शोषण का अंत करता है।
- समानता में विश्वास–आर्थिक असमानता अधिकांश दोषों का कारण है। इससे समाज कमजोर होता है। समाज में आर्थिक असमानता के कारण कुछ लोग ही देश की संपत्ति का लाभ उठाते हैं। व्यक्तिगत समानता के सिद्धांत पर समाजवाद विश्वास रखता है। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता, समाजवाद आर्थिक समानता की विचारधारा को मानते हैं।
- स्वतंत्रता में विश्वास– व्यक्ति के विकास के लिए स्वतंत्रता आवश्यक होती है। व्यक्ति के विकास के लिए समाजवादी सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना चाहते हैं। समाजवाद आर्थिक समानता के द्वारा व्यक्ति को स्वतंत्रता प्रदान करता है।

समाजवाद के मूल तत्व

- समुदाय– व्यक्ति का व्यवहार समुदाय के कारण ही स्वार्थी तथा लालची हो गया हैं। समुदाय व्यक्ति से प्राथमिक है व्यक्तिवाद एवं पूंजीवाद को बदलने की जरूरत है।
- सहयोग–स्वाभाविक रूप से व्यक्तियों में सहयोग होता है किंतु इस प्रतिस्पर्धा के कारण नैतिकता का विकास नहीं होता।
- सामाजिक वर्ग– सामाजिक वर्ग आर्थिक आधार पर समाज को विभाजित करते हैं, ये समाज का विभाजन जाति, प्रजाति और धर्म के आधार पर नहीं करते हैं।
- समानता– आर्थिक समानता समाज में आवश्यक है। विषमता समाज द्वारा निर्मित होती है। नैतिक रूप से सभी व्यक्ति समान होते हैं।
- सामूहिक स्वामित्व– उत्पादन सामूहिक होते हैं, लाभ का वितरण भी साझा होना चाहिए। निजी संपत्ति द्वारा समाज में विषमता व्याप्त होती है इसलिए समाजवादी निजी संपत्ति के विरोधी हैं। समुदाय एवं राज्य का नियंत्रण संपत्ति पर होना चाहिए।

समाजवाद के रूप

- काल्पनिक समाजवाद– काल्पनिक समाजवाद का प्रारंभ 18 वीं सदी में माना जाता है। प्लेटो काल्पनिक समाजवादी विचारक है एमासे, जर्मिया, थॉमस मूर, छोशिया आदि भी काल्पनिक विचारक हैं। वेपर का मत है कि उन्होंने सुंदर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की परंतु गुलाब के वृक्षों के लिए कोई धरती तैयार नहीं की। एंगिल्स ने अपने पूर्व प्रचलित आधुनिक समाजवाद के प्रारम्भिक विचारधाराओं को काल्पनालोकीस समाजवाद (Utopian socialism) का नाम दिया।

- मार्क्सवादी समाजवाद– मार्क्सवादी समाजवाद का प्रारंभ हो मार्क्स एवं एंगेल्स साम्यवादी घोषणापत्र 1848 से समझा जाता है कार्ल मार्क्स मार्क्सवादी समाजवाद के थे। 1971 ई0 में लेनिन ने इनके विचारों को यथार्थ रुपी धरातल पर उतारने का किया। समाजवाद को वैज्ञानिक का रूप मार्क्सवादीयों ने प्रदान किया।
- विकासवादी समाजवाद– समाजवाद की स्थापना का कार्य शक्ति या बल प्रयोग के आधार पर नहीं बल्कि शांतिपूर्ण और संवैधानिक साधनों के आधार पर होना चाहिए। विभिन्न वर्गों में पारस्परिक सहयोग की भावना पर बल दिया जाना चाहिए यही विकासवादी समाजवाद के समर्थकों का मानना था।

उपरोक्त के साथ फेबियनवाद, जर्मनी का पुनरावृत्तिवाद, सिंडिकवाद, संघवाद, एवं श्रेणी समाजवाद ,समाजवाद के अन्य प्रमुख रुप है।

भारत में समाजवाद का विकास

समाजवाद सि्द्धान्त एवं आंदोलन, दोनो ही है और यह विभिन्न ऐतिहासिक एवं स्थानीय परिस्थितियों में विभिन्न स्वरुप धारण करता है। Esenwein, George (2004) समाजवाद वह आंदोलन है जो उत्पादन के प्रमुख साधनों के सामाजीकरण पर आधारित वर्गविहीन समाज स्थापित करने के लिए सतत् प्रयत्नशील है और जो मजदूर वर्ग को इसका मुख्य आधार बनाता है, क्योंकि वह इस वर्ग को शोषित वर्ग मानता है जिसका ऐतिहासिक कार्य वर्ग आधारित व्यवस्था का अंत करना है।

भारत में समाजवाद प्राचीन काल से ही विभिन्न रूपों में रहा है। हिन्दू धर्म में आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत 'धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष' की अवधारणा के माध्यम से सभी चार स्तम्भों के बीच संतुलन स्थापित किया गया था, जो धन के अतिकेंद्रीकरण (पूंजीवादी विचार) के विचार के विरुद्ध है। बौद्ध और जैन धर्म का अस्तेय आवश्यकता से अधिक संसाधनों के एकत्रीकरण का विरोध करता है, जो समाजवाद की अवधारणा के अनुकूल है। अशोक के शिलान्यासों से लोक कल्याणकारी राज्य के संदर्भ में जानकारी प्राप्त होती हैं वहीं रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख सुदर्शन झील के निर्माण के संदर्भ में प्रमाण देता है। इसी प्रकार मध्यकाल में फिरोजशाह तुगलक द्वारा नहरों का निर्माण, बेरोजगारों के लिए पेंशन जैसी समाजवादी योजनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार भारतीयों के लिए समाजवाद की अवधारणा बिल्कुल नई नहीं थी।

भारत में समाजवाद का आरंभ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध किये जाने वाले राष्ट्रीय संघर्ष में ही निहित है। सन 1929 के लाहौर अधिवेशन में सर्वप्रथम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्य समिति ने घोषित किया था, "इस भारतीय जनता की दरिद्रता विदेशियों द्वारा किये गये शोषण के कारण ही नहीं वरन् आर्थिक व्यवस्था के कारण भी है, जिसका विदेशी समर्थन करते हैं। जनता की दशा सुधारने तथा इस दरिद्रता को दूर करने के लिए समाज की आर्थिक तथा सामाजिक बनावट में परिवर्तन करने पड़ेंगे। भारतीय आदर्शों और परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद का प्रतिपादन गांधीजी द्वारा किया गया। समाजवादी विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, आचार्य नरेंद्र देव, जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, आदि नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंदर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधी जी ने मध्यमार्ग अपनाते हुए वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग समंवय पर बल दिया 'ट्रस्टीशिप का सिद्धांत' इसी समन्वय का परिणाम था। ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के अनुसार अमीर वर्ग अपनी आवश्यकतानुसार धन संपत्ति सहज कर, अन्य संसाधनों का जरुरतमंदों में वितरण कर दे। अमीर वर्ग स्वयं को सम्पत्ति का संरक्षक समझें, सम्पत्ति का स्वामी नहीं। गांधी जी के इस सिद्धांत ने पूंजीवाद को नैतिक आधार प्रदान किया। जिस

समाजवाद पूंजीवाद के मध्य दूरी कम हुई स्वतंत्रता पश्चात् नेहरु की समाजवादी नीतियों (जैसे– मिश्रित अर्थव्यवस्था– राज्य और निजी क्षेत्र की समान सह भागीदारी) पर गांधीवादी समाजवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में समाजवाद की भूमिका

1917 में रूस में बोल्शेविक क्रांति सम्पन्न हुई, जिसने कार्ल मार्क्स द्वारा दिए गये साम्यवाद के सिद्धांत को वास्तविक रूप प्रदान किया। इस क्रांति से भारत में समाजवाद की भावना का प्रसार हुआ। इसी कालखण्ड में गांधी जी के नेतृत्त्व में कांग्रेस किसानों, मजदूरों के मध्य जनाधार बढ़ाने के लिए उनकी समस्याओं को उठाकर चंपारण, अहमदाबाद मिल हड़ताल और खेड़ा सत्याग्रह जैसे आन्दोलन कर रही थी जो समाजवाद की भावना के अनुरूप थे । मजदूरों के हितों के अनुरूप श्रम सुधारों को लागू करवाने के लिए 1920 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना एक व्यवस्थित समाजवादी प्रयास था। भारतीय क्रांतिकारियों के द्वितीय चरण में चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह जैसे क्रांतिकारियों पर स्पष्ट रूप से समाजवाद का प्रभाव था। इन दोनों के प्रयासों से 1928 में दिल्ली में हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन का नाम बदलकर 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन'कर दिया गया था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जवाहरलाल और सुभाषचंद्र बोस जैसे युवा नेता भी समाजवाद में गहरी रूचि रखते थे । 1931 के कराची अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने समाजवाद की ओर स्पष्ट रुझान प्रदर्शित किया था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने 1934 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समाजवादी धड़े ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंदर एक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की थी जिसमें जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्र देव, राममनोहर लोहिया, विनोभा भावे, कमलादेवी चटोपाध्याय जैसे नेताओं की अहम भूमिका रही थी । कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य गांधी जी की समझौतावादी, घोर अहिंसक नीतियों के विरोधी थे, वे सुभाषचंद्र बोस की आवश्यकता पड़ने पर सशस्त्र क्रांति का समर्थन करते थे। सन् 1936 के बाद जवाहरलाल नेहरु और सुभाषचंद्र बोस के हाथों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कमान आने के बाद समाजवादी विचारों का महत्व और अधिक बढ़ गया था। सुभाषचंद्र बोस ने 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर का लाभ अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्ति में लगाने हेतु करने का प्रस्ताव रखा जिसे गांधी जी ने खारिज कर दिया। सुभाषचंद्र ने कांग्रेस से अलग होकर 'कम्युनिस्ट ब्लॉक' 'फॉरवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की। अंततः सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिन्द फौज का गठन कर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया ।1942 के भारत छोडो आन्दोलन के दौरान 'कांग्रस सोशलिस्ट दल' के नेताओं जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, बीजू पटनायक और अरुणा आसफ अली ने भूमिगत रहकर कार्य किया था।

समाजवाद को बढ़ावा देने में आचार्य नरेंद्र देव एवं जय प्रकाश नारायण की भूमिका

भारतीय समाजवादी विचारकों में आचार्य नरेन्द्र देव जी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने समाजवाद की रूपरेखा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसलिए नरेन्द्र देव जी को "भारतीय समाजवाद का जनक" भी कहा जाता है। आचार्य जी के समाजवाद पर महात्मा गॉधी जी के व्यक्तित्व तथा मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा का भी प्रभाव दिखाई देता है। सन् 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट दल की स्थापना में राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेंद्र देव की महत्वपूर्ण भूमिका रही । आचार्य नरेंद्र देव जी की अध्यक्षता में कांग्रेस सोशलिस्ट दल का पहला अधिवेशन संपन्न हुआ था। 1948 में कांग्रेस से सोशलिस्ट दल पूर्णतया अलग हो गया इसका प्रथम अधिवेशन पटना में आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में ही संपन्न हुआ था। आचार्य नरेंद्र देव ने समाजवाद के विषय में लिखा है "समाजवाद का उद्देश्य ऐसे वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है

जिसमें न कोई शोषक ना कोई शोषित, बल्कि समाज सहकारिता के आधार पर निहित
एक सामूहिक संगठन हो।" आचार्य नरेन्द्र देव के मतानुसार दो बातें स्पष्ट थी कि
अधिनायकत्व हो, पार्टी का नहीं और दूसरा यह कि जैसे ही उददेश्य की पूर्ति हो
अन्त होना चाहिए।

आचार्य नरेन्द्र देव जी ने नैतिक मूल्यों की प्राथमिकता पर बल दिया है।
समाजवादी थे। वे समाजवाद को एक सांस्कृतिक आन्दोलन मानते थे। वे शोषण के
थे।उनका मानना था कि जनता को संगठित करने तथा देश को प्रजातंत्र के लिये
लिये राष्ट्रवादी आन्दोलन को समाजवादी विचारधारा की तरफ मोडना होगा। आचार्य
समाजवाद को मानवतावाद का संरक्षक मानते थे न कि हिंसा का दर्शन। वे समाजवाद
नैतिक तथा आध्यात्मिक विचारधारा सिद्ध करना चाहते थे। वे नैतिक आधार पर पूँजीवाद
करते थे। उन्होंने मार्क्सवाद की उपयोगिता तथा विशिष्टता पर जोर देते हुए लिखा था कि
जनता को खोई मानवता को फिर से पाने का उपाय ही नहीं बताया अपितु इस कार्य के लिए
भी किया तथा मानवता को पुनः प्रतिष्ठित किया है।"

लोकनायक जयप्रकाश नाारायण राजनीतिक दार्शनिक की अपेक्षा सामाजिक दार्शनिक
पर बल देते थे। उन्होंनें साधारण जनता के लिये जीवनभर संघर्ष किया। उन्होंनें समय समय
राजनीति में सुधारों के लिये अपने मूल्यवान सुझाव दिये तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार को
सामाजिक समस्याओं की जड़ माना। उनका मानना था कि समाजवाद व भारतीय परम्परा
अटूट रिश्ता रहा है। तथा समाजवाद के माध्यम से सामन्तवादी शोषण तथा पूँजीवादी शोषण
किया जा सकता है। जयप्रकाश नाारायण समाज में फैली राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक
सांस्कृतिक असमानता को दूर करने के लिये समाजवाद को सशक्त माध्यम मानते थे।

जयप्रकाश नारायण ने अपने अमेरिकी प्रवास के दौरान मार्क्स तथा लेनिन के साहित्य का अध्ययन किया और वापस भारत आने पर उनकी विचारधारा मार्क्सवादी बन गयी। में उन्होंने "why socialism" पुस्तक की रचना की। उन्होंने इस पुस्तक के द्वारा समाजवाद भारतीय संदर्भ में व्याख्या की तथा समाजवाद की उपयोगिता पर जोर दिया तथा समाजवाद को लोकप्रिय बनाने के लिये संघर्ष किया। जयप्रकाश नाारायण ने अपनी पुस्तक "socialism" में समाजवादी समाज की स्थापना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनका मानना कि समाजवाद की स्थापना उद्योगो के राष्ट्रीकरण करने से ही सम्भव नहीं है। उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब तक कोई भी दल राज्य की शक्ति अपने हाथ में न लें ले, तब तक वह समाजवाद की स्थापना नहीं कर सकता है। उनका मानना था कि जब गरीब, दलित, किसान सभी कमजोर वर्गों में चेतना का उदय होगा तत्पश्चात् समाजवाद की स्थापना हो जायेगी।

जयप्रकाश मानते थे कि 'समाजवाद आर्थिक एवं सामाजिक पुर्ननिर्माण का सिद्धान्त समाजवाद का लक्ष्य समाज का समन्वित विकास करना है। समाज में विषमता का कारण उत्पा के साधनों पर समाज के कुछ लोगों का एकाधिकार है। यदि ये साधन समाज के प्रत्येक व्यक्ति उपलब्ध करा दिए जाए तो वर्तमान दरिद्रता और आर्थिक विषमताएं काफी हद तक समाप्त जायेंगी वशर्ते कि जनसंख्या को एक निश्चित सीमा से आगे न बढ़ने दिया जाए।

भारतीय संविधान में समाजवाद

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में "सामाजिक आर्थिक राजनीतिक न्याय" जैसे मूलभूत समाजवादी तत्व उपस्थित थे। साथ ही भाग 4 में वर्णित राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्

निम्नलिखित समाजवादी प्रावधानकिये गये हैं। भारतीय संविधान में समाजवाद की झलक निम्न अनुच्छेदों में मिलती है–

- अनुच्छेद 38: सामाजिक आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को कम करना।
- अनुच्छेद 39: भौतिक संसाधनों के एकत्रीकरण को रोकना, स्त्री पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्रदान करना।
- अनुच्छेद 41: वृद्धों, बेरोजगारों और विकलांगों के लिए सार्वजनिक सेवाएं प्राप्त करने का प्रावधान करना।
- अनुच्छेद 42: कार्यस्थल पर सुरक्षित मानवीय दशाएं सुनिश्चित करना।
- अनुच्छेद 43: सभी कामगारों के लिए निर्वाह योग्य मजदूरी सुनिश्चित करना।
- अनुच्छेद 47: लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को ऊपर उठाना।

वर्ष 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा समाजवाद शब्द को भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा गया। सर्वोच्च न्यायालय ने समाजवाद को संविधान की आधारभूत ढाँचे का भाग माना है किन्तु सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवाद किसी राजनीतिक विचारधारा से नहीं, अपितु लोककल्याणकारी राज्य को संदर्भित करता है। गरीबी और असमानता को कम करने में समाजवाद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाजवाद में राज्य की अर्थव्यवस्था में सक्रिय भूमिका रहती है ।स्वतंत्रता से लेकर 1991 के उदारीकरण पूर्व दौर तक भारतीय अर्थव्यवस्था का झुकाव समाजवाद की ओर था । इस दौर में भारत की आर्थिक विकास दर काफी कम रही है जिसके लिए विदेशी निवेश की कमी, भारत में अवसंरचनात्मक ढाँचे का अभाव, लाल फीताशाही, भारत में निजी क्षेत्र की सीमित भूमिका, गरीबी, अशिक्षा, अकुशल श्रमिक, निम्न पूंजी उत्पाद अनुपात, भूमि और श्रम सुधारों का आभाव उत्तरदायी था। भारत में लाल फीताशाही, अफसरशाही, भ्रष्टाचार, राज्य प्रायोजित समाजवाद की खामियां हैं जो गरीबी को कम करने में बहुत सफल नहीं हुई।

निष्कर्ष

समाजवादी विचारधारा न केवल समाज की आर्थिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करती हैं। यह समाज में समानता स्वतंत्रता और सहयोग की भावना पैदा करती हैं, और प्रत्येक प्रकार के शोषण का विरोध करती है। समाजवाद व्यक्ति के महत्व को शून्य करके समाज को आधिकाधिक महत्व देता है। यह मानता है कि व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति समाज के द्वारा ही होगी व्यक्तियों के विकास के बिना समाज का विकास संभव नहीं है। समाजवाद ने शोषण का विरोध किया तथा समाज को संगठित किया है। समाज हमें नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। पूँजीवादी और समाजवादी प्रणालियों का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि दोनों में से कोई भी अपने आप पूर्ण नहीं है। यदि तुलनात्मक रूप में विश्लेषण किया जाए तो समाजवादी आर्थिक प्रणाली पूँजीवादी की तुलना में अधिक सफल है, समाजवादी व्यवस्था के अधिक सफल होने का कारण अधिकतम सामाजिक कल्याण की भावना का होना है तथा पूँजीवाद के शोषण से समाज को मुक्ति दिलाना हैं निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता हैं जहां पूँजीवाद असफल होता है वहां समाजवाद सफल होता हैं। इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था, पूँजीवादी व्यवस्था के दोषों को दूर करने का एक साधन है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. देव, आचार्य नरेन्द्र, राष्ट्रीयता और समाजवाद, ज्ञानमण्डल पब्लिकेशन, वाराणसी।
2. अनीस, मुख्तार, साम्प्रदायिकता और समाजवादियों का संघर्ष, समाजवादी अध्ययन संस्थान, लखनऊ।
3. गौतम, बृजेन्द्र प्रताप, समाजवादी चिन्तन का इतिहास, उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ।
4. ओंकार,शरद, (सं0),डॉ0 लोहिया के विचार, लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद
5. गांधी, मोहनदास करमचन्द, मेरा समाजवाद, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
6. तिवारी, गंगा दत्त, आधुनिक राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, मिनाक्षी प्रकाशन मेरठ।
7. मिश्रा, राजेश, राजनीति विज्ञान एक समग्र अध्ययन, सातवाँ संस्करण, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली।
8. बिस्वाल, तपन, तुलनात्मक राजनीति संस्थाएं और प्रक्रियाएं, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, दिल्ली।
9. Bernstein, Eduard. Evolutionary Socialism: A Criticism and Affirmation. Translated by Edith C. Harvey. Introduction by Sidney Hook. New York: Schocken, 1961 Reprint, 1967.
10. Marx, Karl. Manifesto of the Communist Party. Introduced by Harold J. Laski. London, 1948.
11. McLellan, David. Karl Marx: His Life and Thought. London: Macmillan, 19[illegible]
12. Lichtheim, George. A Short History of Socialism. Glasgow: Fontana/Collins, 1975.
13. Webb, Sidney. The Fabian Society: its Objects and Methods. Notts., U[illegible] Stafford, 1891.
14. Cole, G. D. H. History of Socialist Thought. 7 vols. New York; London:Macmillan,1957
15. https://www.shodh.net/phocadownload/ vol8 issue 1 Shodh%20Sanchayan%20Vol%208%20Issue%201 Article 7 Bharat [illegible] Samajvad %20-%20Dr. Neelam Chaure.pdf retrived on 15.09.2022.
16. https://www.magadhuniversity.ac.in/download/econtent/pdf/Samazwad,%20 BA-3.pdf retrived on 10.09.2022.
17. https://www.kailasheducation.com/2022/05/acharya-narendra-dev-ke-raj[illegible] vichar.html retrived on 23.09.2022
18. https://www.scotbuzz.org/2019/06/jayaprakash-narayan-ke-rajaneet[illegible] vichar.html retrived on 23.09.2022
19. https://www.forwardpress.in/2022/06/jp-socialism-social-justice-hindi/ retrived on 23.09.2022

ISSN 2230-7370
(Peer - Reviewed)

MAN, NATURE & SOCIETY

Annual Journal of the Department of Political Science

VOL. IX 2023

Prof. Neeta Bora Sharma
Editor-in-Chief
Department of Political Science
D.S.B. Campus, Kumaun University
Nainital

CONTENTS

	Editorial		
1.	Green Revolution in Anthropocene : Its Ecological Consequences and the Way Ahead	Dr. Kailash Chandra Yogesh Chandra Pandey	1-5
2.	Regionalism, A search for identity in Indian Politics	Dhiraj Gurung	6-9
3.	Democratisation of Indian Politics through Social Media	Satyendra Tiwari	10-17
4.	Uniform Civil Code in India an the proposal of Uttarakhand Government to implement it	Khushboo Arya	18-22
5.	Van Panchayats, a unique example of Community Forestry : Need for Revival	Kriti Tiwari Prof. Neeta Bora Sharma	23-29
6.	New climate change discourses of India : Moving toward a more advanced climate policy	Radhika Devi Dr. Kalpana S. Agrahari	30-37
7.	Challenges to Indian Federalism	Chandralok Kumar	38-44
8.	अन्य पिछड़ा वर्ग और क्रीमी लेयर	अविनाश जाटव प्रो0 नीता बोरा शर्मा	45-55
9.	गठबंधन सरकारों (1989–2009) के काल में राष्ट्रपति की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन	नीमा	56-66
10.	समाजवादी विचारों की समकालीन प्रासंगिकता : एक अध्ययन	प्रतिभा वर्मा पंकज सिंह	67-74

11.	आधुनिक भारत में पंचायत राज में सशक्त होती महिलाएं	मीनाक्षी	75-78
12.	अनुभववाद : राजनीतिक–दार्शनिक अध्ययन	ममता तड़ागी	79-86
13.	आमूलवादी पर्यावरणीय लोकतंत्र : भारत में पर्यावरणीय स्वराज की ओर बढ़ता कदम	कृष्णपाल सिंह डॉ. महेश मेवाफरोश	87-93
14.	भारतीय राज्य राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन : भूमण्डलीयकरण के विशेष सन्दर्भ में	किरन बिष्ट	94-99
15.	भारतीय संसद में महिलाओं की भागीदारी	प्रियंका पाण्डे	100-103
16.	उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति में स्थानीय मूल जातियों के प्रभाव का ऐतिहासिक निरूपण	डॉ. पूनम पन्त	104-111
17.	भारतीय लोकतंत्र में सहभागी लोकतंत्र की तलाश : लोकपाल के सन्दर्भ में	डॉ. लता जोशी	112-121
18.	उत्तराखण्ड की संस्कृति तथा प्रकृति	डॉ. अंजुम अली	122-125
19.	स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक राष्ट्रवाद	डॉ. प्रकाश लखेड़ा रेखा मौनी	126-135
20.	भारतीय समाज एवं वर्तमान में जनजाति समाज की आर्थिक, सामाजिक स्थिति	डॉ. महेन्द्र प्रसाद	136-139
21.	संसदीय शासन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचारों की प्रासंगिकता	डॉ. सूर्य भान सिंह अशोक कुमार	140-147

Van Panchayats, a unique example of Community Forestry: Need for Revival

Kriti Tiwari*, Professor Neeta Bora Sharma**

Abstract

Uttarakhand boasts of being the first state in the country to establish the distinct institution of Van Panchayat based on the principles of Community based Forest Management. Van Panchayat appears to be a perfect example of harmony between nature and the local inhabiting the forests. However, with continuous amendments in the Van Panchayat Act these bodies have practically become dysfunctional. Increased bureaucratization, enhanced centralization in forest matters, lack of awareness about their rights and responsibilities among locals, poor budgetary support, ambiguity in the matters of accountability and lack of transparency are some of the reasons identified behind the deterioration of Van Panchayats. This paper underlines the significance of Van Panchayats in ensuring women participation, protecting the rights of forest dwelling communities and indigenous people, conserving the declining biodiversity and combating climate change. It also highlights the need to revitalize the Van Panchayats and establish them as a pioneer in the field of achieving sustainable development.

Key words : Van Panchayats, Community based Forest Management, Sustainable Development.

Objectives of the study:

1. To analyze the common effect of the green revolution in general and ecological effect in particular in anthropocene.
2. To examine the way and methods of reducing harmful anthropogenic effects on ecology and the environment.
3. To suggest alternative and optional strategies to meet the future needs of food grain in a sustainable way.

Introduction

Uttarakhand has a valuable tradition and glorious past of living in harmony with nature and conserving its natural resources. The socio-economic life of the people of Uttarakhand greatly depends on forests and the resources obtained from them as forests constitute around 45.44% of the total geographical area of Uttarakhand.1 Van Panchayats, also known as Forest Councils, were first constituted in 1931 in the erstwhile United Provinces under section 6 of Scheduled Districts Act, 1874.2

At present, Van Panchayats are present in 11 of the 13 districts of Uttarakhand. The districts of Udham Singh Nagar in Kumaun and Haridwar in Garhwal do not have any Van Panchayats. The district of Pauri (2,450) and Dehradun (170) has the highest and the lowest number of Van Panchayats respectively. The border district of Chamoli has the largest area under Van Panchayats, i.e 3,27,047.5 hectares, whereas the district of Dehradun has just 6,571.275 hectares area under the jurisdiction of Van Panchayats- the lowest among the districts having Van Panchayats in the state.

* Research Scholar, Dept of Political Science, Kumaun University, Nainital
** Professor and Department Head, Dept of Political Science, Kumaun University, Nainital

Table 1- Details of District-wise area under Van Panchayats

District	No. of Van Panchayat	Area under Van panchayats (Hectare)
Almora	2,324	77,693.25
Bageshwar	822	38,782.92
Chamoli	1,509	3,27,047.5
Champawat	654	33,649.77
Dehradun	170	6,571.275
Nainital	413	32,922.487
Pauri	2,450	55,813.57
Pithoragarh	1,620	1,23,609.7
Rudraprayag	509	18,379.64
Tehri	1,290	14,164.86
Uttarkashi	406	3,983.989
Total	**12,167**	**7,32,688.9**

Source: UK Forest, Uttarakhand Forest Department3

The prominent functions of Van Panchayats include:

a) Prevention of indiscriminate felling of trees except those marked by the forest dept or crucial from the viewpoint of silviculture.
b) To ensure adherence to the rules enacted under forest rules and prevent encroachment on the lands of Van Panchayats.
c) Construction and maintenance of fix boundary pillars.
d) Assisting the SDM in development and protection of forest area.
e) Equitable distribution of forest produce.

History and Evolution of Van Panchayats

In the earlier times, the forest land primarily served as a hunting reserve for the kings, as an abode to the wildlife and as a means of livelihood resources for the common man. Fertile agricultural lands were used for cultivation. In return, the local chiefs would collect the surplus of agricultural produce as land revenue from the peasants and pay part of it to the king.[4] Hence, in the pre-colonial period, though the forest and other land were officially owned by the local King, it was managed and maintained by the communities. However, after the colonization of India the Indian forests were reduced to a source of raw materials to fuel the rapid industrialization process in Europe. The introduction of "Scientific Forestry" in India was one such step in the direction of institutionalizing forest.

In 1815, the British defeated the Gorkhas in the Anglo-Nepalese war and Treaty of Sugauli was signed. Since the then Garhwal King Sudarshan Shah was unable to pay the war compensation, he had to cede the region east of River Alaknanda and River Mandakini to the British. Therefore, the British acquired control over the whole of Kuamun and part of Garhawal. The forests of this newly gained territory had crucial natural resources. Realising their significance, the British started to carry out land settlements in this region to consolidate their control. (Eleven land and forest settlements).[5]

One of the foremost efforts towards this consolidation process was the system of 'Sal Assi Bandobast' given by Mr Traill.[6] Under this arrangement, the village land was demarcated from the forest land and the villagers were given the right to collect fuelwood, graze cattle and cut timber within the village boundaries. In 1921, the British appointed

Kumaon Grievances Committee. The Committee investigated the inhabitants of Kumaon and made 30 recommendations regarding boundary pillars, grazing restrictions, forest offences, timber cutting forest fires etc. On the basis of these proposals, British officials recognised the importance of communities in the management of forests and, in accordance with Section 6 of the Scheduled Districts Act of 1874, established the Forest Council Act, also known as the Forest Panchayat Act. Subsequently, in 1931, Forest Panchayat Act was enacted that empowered the village communities to manage the forest and village forest council under the name of Van Panchayat was constituted.

After independence, it was observed that the rights of the forest dwelling communities often came in conflict with the developmental needs. For example, the National Forest Policy introduced in 1952 though recognized the rights of the forest dwelling communities but only as long as they are in consonance with the 'national interests'. Therefore the exploitation of forests and its natural resources mostly remained unchecked for the sake of nurturing defense, communications and industries sector.[8] Another significant change was brought when the 42nd constitutional amendment transferred 'forests' from the State List to the Concurrent List,[8] thereby, strengthening the control of the Centre in the management of forests. Another such example is the Forest Conservation Act of 1980. The commercial trees planted in the forest areas are not of much use for the forest dwelling communities as they do not provide enough Minor Forest Produce. However, the Forest Conservation Act, 1980 puts restriction on the diversion of Forest land for non forest purpose by making it mandatory for the state governments to get prior approval from the Centre for any such diversion.[9] An immediate consequence of such steps towards commercial forestry was protests by forest dwelling communities in the states like Odisha, Jharkhand, M.P., Andhra and Maharastra.[10] Chipko movement was also one such example.

On 9th November 2000, Uttarakhand originated as the 27th State of Indian Union. The formation of the hilly state of Uttarakhand gave a new lease of life to the institutions of Van Panchayat. Realising the potential of Van Panchayats, The then Chief Secretary of Uttarakhand R.S. Tolia, promoted the formation of new Van Panchayats.[11] The efforts were mainly focused on the reducing the forest area under a Van Panchayat to ensure effective administration and control; enhancing the participation of women; and increasing the total number of Van Panchayats in the state.[12]

Impact of Amendments on Van Panchayats

The Van Panchayats Act underwent a number of revisions between 1976 and 2012, each of which reduced the authority of Van Panchayats and bureaucratized and concentrated decision-making in the hands of officials from the Forest and Revenue Departments.

The increased bureaucratisation of Van Panchayats curtailed the rights of forest-dwelling communities and strengthened state's control on Van Panchayats. The Amendments in Van Panchayat rules from time to time resulted in increased bureaucratization of the Van Panchayats and progressively restricted the authority and autonomy of this institution. As a result, Van Panchayats are now subjected to multiple authorities, several approvals from forest revenue department, and various bye-laws. Further the DFO is empowered to prepare a composite plan and to give approval to the prior sale of local produce

Significance of Van Panchayats in context of Uttarakhand

Participation of women:

Traditionally women have been involved in the collection of fuelwood and grass for cattle. Therefore, the higher dependence of women and other marginalised groups on forest resources has been acknowledged. The amendment of 2001 had a very important clause added to it wherein reservations were introduced for women, scheduled castes and scheduled tribes. Thereby 50 percent seats of Van Panchayat management committee were reserved for women and two seats were reserved for SC/ ST male and female, respectively.[13] This landmark legislation has not only recognised the role of women in natural resource management, but has given equal representation for women in the governing body for the first time in Indian history. Over a period of time, women's participation in the Van Panchayats has increased, as many Van Panchayats across the districts are headed by women.

Further, the 2012 amendment provided for greater participation of women in leadership roles. To ensure the selection of women to the 50% seats of Sarpanch, the amendment prescribed to select man and woman members alternatively as the Sarpanch of the Van Panchayat management committee.[14]

Community Participation in management of resources:

According to the Van Panchayat Rules, the villagers themselves set the guidelines for daily administration. These regulations cover monitoring, dispute resolution procedures, guard hiring, fines for infractions, financial management, fair usufruct distribution, and the utilisation of surplus earnings for the community.

Recognition to Indigenous People's Rights:

The Forest Councils Act provides user rights to the forest dwelling communities and the local inhabitants of the areas surrounding Van Panchayat areas. Van Panchayats strive to achieve meaningful involvement of marginalized communities and other vulnerable groups in the management of forests and its resources. Such efforts could go a long way in providing equal access to the concerned individuals and communities in the environmental decision making process.

Under Section 6 (a) and 6(b) of the Uttarakhand Panchayati Forest Rules, 2005 contains the following provisions regarding user rights of the local communities:[15]

6 (a)- Rights of the Users:

In those village forests/ Panchayati forests which are made up of reserved forests, only those persons whose rights are recorded in the lists of such rights, the rights of users shall be admissible to those landless persons who have been residing in that village for ten consecutive years, where such Village Forests/ Panchayati Forests have been constituted.

6 (b)- Duties of Users:

The duties of the users to whom the exercise of rights under section 6(a) is payable shall be as follows:

1. In case of fire accident in the concerned village forest, cooperation will have to be given for its mitigation.

2. If there is any type of forest crime like encroachment, illegal grazing or illegal dumping in the concerned village forest, the information of the same will have to be given to the Management Committee without delay.
3. Cooperation should be given for the protection of the plantation works already established or done by the Management Committee in the concerned village forest.

Conservation of dwindling biological diversity:

To achieve a safe, healthy and protective environment, a significant element is the preservation and conservation of our ecological biodiversity. Van Panchayats, by strengthening the voice of the indigenous communities and involving them in the decision making process serve as a stepping stone towards the larger goal of securing Environmental Justice.

As per a World Bank Report,[16]

"While indigenous peoples own, occupy, or use a quarter of the world's surface area, they safeguard 80 percent of the world' remaining biodiversity."

Combating Climate Change:

A third of the world's forests, which are essential for reducing greenhouse gas emissions, are predominantly managed by local communities, families, smallholders, and indigenous peoples.[17] These communities have been serving as the preservers of vital knowledge systems. They also help in biodiversity conservation and supporting One Health systems to preserve the ecosystem services.

Challenges faced by Van Panchayats:

Lack of Coordination: The Forest Department oversees the Van Panchayat's finances while the Revenue Department has administrative authority over it. There is frequently a lack of collaboration between these two departments.

Unreliable Elections: Due to a shortage of funding from the Revenue Department, elections are frequently postponed. Elections are often held with only a partial participation of the stakeholders.

Lack of Financial Autonomy: Other than fortification against forest fires, Van Panchayats receive no special funding from the state budget. Van Panchayats must raise money through membership dues and penalties, but these sources are not enough to cover their administration costs.

Forest Fires: Villagers are not adequately motivated to avoid forest fires in the absence of financial assistance and independence to manage forests. The government has been giving funding to Van Panchayats that have vast tracts of forest in an effort to encourage public participation in defending forests against fire. The interests of those Van Panchayats with smaller regions under them have been negatively impacted by this.

Lack of Awareness: It is frequently noted that the management committee members and the Sarpanch were unaware of the guidelines, obligations, and rights outlined in the Uttaranchal Panchayati Forest Rules. In addition, they received no instruction in conservation or any other aspect of forestry.

Women Participation: Women's access to information has been hampered by a lack of education. Additionally, it is challenging for them to routinely attend meetings due to their enormous workload and other responsibilities.

Policy Bottlenecks: Excessive responsibilities on Sarpanch, increased bureaucratization, multiplicity of authorities and institutions, and ambiguous bureaucratic accountability have emerged as obstacles in the efficient functioning of Van Panchayats.[18]

Non-Implementation of Forest Rights Act:

The FRA recognizes Individual Forest Rights like right to live in the forest land by forest dwelling communities as well as the Common Forest rights including the access and management rights of these communities.[19] However, only a total of 6,665 claims for forest rights have been lodged as of 28 February 2022 since the FRA's passage in December 2006. There are 3,574 IFR claims and 3,091 CFR claims out of these. There are 172 recognised claims in all (171 individual claims and 01 community claim).[20]

Suggestions and Conclusion

Van Panchayat is an excellent example of community based forest management. So the revival of these institutions prerequisites the involvement of people in the management, administration and decision making process. The need of the hour is to create awareness among the people, particularly women, about their rights and responsibilities through periodic awareness campaigns and proper training. Further it is suggested to de-link the revenue and forest departments from the day to day functioning of the Van Panchayats.[21] Additionally, comprehensive land settlements, enhancing the regulatory powers of the Van Panchayats,[22] creating a separate organization or an additional board for their management, involvement of NGOs, quick disposal of court cases and ensuring adequate punishments for violators. Also, the Nyaya Panchayats created under Panchayati Raj system can be used to deal with cases regarding forest offences.[23]

Forest resources have always been an important part of rural subsistence in states like Uttarakhand. It also serves as a source of raw materials for manufacturers and a way for the government to make money. It is crucial that such resources are handled responsibly because they were used extensively during the colonial and post-independence periods by various parties. Hence the rejuvenation of Van Panchayats will not only provide an opportunity to adhere to the principles of sustainable development but also present a shining example of community based forest management to other states as well.

Reference:

1. India State of Forest Report, Forest Survey of India, Ministry of Environment Forest and Climate Change, 2021, Pg No 31-32, available at https://fsi.nic.in/forest-report-2021-details (accessed on 22/08/2022)
2. Agrawal, Rakesh. "Van panchayats in Uttarakhand: A case study." Economic and Political Weekly (1999): 2779-2781.
3. https://www.forest.uk.gov.in/van-panchayat (accessed on 22/08/2022)
4. Gadgil, Madhav, and Ramachandra Guha. Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India. Routledge, 2013, Pg No 64.

5. Tolia, R. S. "Some Aspects of Administrative History of Uttarakhand, India: Uttarakhand: Bishen Singh Mahendra Pal Singh. 2009, Pg No 84
6. Ballabh, Vishwa, and Katar Singh. "Managing forests through people's institutions: a case study of Van Panchayats in Uttar Pradesh hills." Indian Journal of Agricultural Economics 43.902-2018-2635 (1988): 296-304.
7. Gadgil, Madhav, and Ramachandra Guha. Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India, 1995, Pg No 45-47.
8. The Constitution of India, Government of India: Ministry of Law and Justice Legislative Department, 2020: Pg No 333.
9. Singh, Yashpal. Forest Conservation Act, 1980- A summary. Wealthy Waste, 2012, Available at https://www.wealthywaste.com/forest-conservation-act-1980-a-summary (accessed on 26-08-2022)
10. Gadgil, Madhav, and Ramachandra Guha. Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India, 1995, Pg No 65
11. Naaz, Isha, and Geetanjoy Sahu. "Revisiting Governance of Van Panchayats: Experiences from Pauri Garhwal, Uttarakhand." The Indian Journal of Social Work 80.4 (2019): 525-546.
12. Uttaranchal Panchayati Forest Rules, 2005; Available at: https://forest.uk.gov.in/general-rules (accessed on 20/08/2022)
13. Uttarakhand Panchayati Forest Rules, 2005, Available at: https://forest.uk.gov.in/general-rules (accessed on 20/08/2022)
14. Uttarakhand Panchayati (Amendment) Rules, 2012, Available at: https://forest.uk.gov.in/general-rules (accessed on 20/08/2022)
15. Uttarakhand Panchayati Forest Rules, 2005, Available at: https://forest.uk.gov.in/general-rules (accessed on 20/08/2022)
16. https://www.worldbank.org/en/topic/indigenouspeoples (accessed on 23/08/2022)
17. https://www.fao.org/zhc/detail events/en/c/1028010/#:~: text=Traditional%20 indigenous%20territories%20encompass%2022, families%2C%20 smallholders% 20and%20local%20communities. (accessed on 24/08/2022)
18. Negi, B. S., D. S. Chauhan, and N. P. Todaria. "Administrative and policy bottlenecks in effective management of Van Panchayats in Uttarakhand, India." Law Env't & Dev. J. 8 (2012): 141-159.
19. The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006, Available at https://www.indiacode.nic.in /bitstream /123456789/8311/1/a2007-02.pdf (Accessed on 22/08/2022)
20. Monthly Progress Report on FRA, Ministry of Tribal Affairs, April 2019, Pg No 3-12, available at https://tribal.nic.in/FRA.aspx (accessed on 22/08/2022)
21. Maithani, B.P. Community Based Resource Management A Study of Forest Panchayats of Uttaranchal. Hyderabad: National Institute of Rural Development, 2008, Pg No 76-78.
22. ibid
23. ibid